
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no.
Book no.
Reg no.
C. L. SAH



मूल्य—दो रुपया आठ आना

प्रकाशक



प्रथम संस्करण, मार्च १९५६

मुद्रक—
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,
लहरतारा, बनारस—४

वत्सराज उदयन से सम्बन्धित संस्कृत साहित्य में चार नाटक हैं—महाकवि भास लिखित-स्वप्न वासवदत्ता एवं प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और श्रीहर्ष रचित-प्रिय-दर्शिका तथा रत्नावली।

'वत्सराज' की रचना उदयन, वासवदत्ता और मगधराज पुत्री पद्मावती के जीवन की पृष्ठ-भूमि पर हुई है। प्रस्तुत पुस्तक की रचना में कथा सरित्सागर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, स्वप्न वासवदत्ता आदि प्रमुख ग्रन्थों की सहायता ली गई है।

ऐतिहासिक तथ्यों का प्रतिपालन किया गया है। कथा-वस्तु के अतिरिक्त की स्वाभाविक कल्प-नाएँ मेरी अपनी हैं।

पुस्तक आपके समक्ष है।

—रमेशचन्द्र झा

एक

"हमलोग कहाँ हैं, माँ..."

"उदयाचल के शिखर पर...."

"और पिताजी ?"

"पिताजी...." एक दीर्घ निश्वास निकल गया।

"पिताजी कहाँ हैं, माँ ?"

"तुम्हें यह शब्द किसने सिखाया....किसने...." कहती हुई नारी ह्री मन आकुल हो उठी। उसके समक्ष एक विराट प्रश्न-चिह्न-सा खड़ा हो रहा।

"आश्रम के सखा मुझे बहुत चिढ़ाते हैं। कहते हैं—इसके पिता नहीं है। बोलो न माँ, मैं क्या उत्तर दूँ, उन्हें....क्या उत्तर दूँ...." कहता हुआ बालक अपनी माँ से लिपट गया। माँ की ममतामयी आँखें उमड़ आयीं।

"तुम्हारे पिता यहाँ से बहुत दूर हैं....बहुत....दूर...."

"कितनी दूर माँ....?"

"इतनी दूर कि जितनी दूर की कल्पना भी न की जा सके...."

"क्या वे यहाँ नहीं आते ?"

"आते तो हैं ! आज तुम इतने आकुल क्यों दीख रहे हो....?"

"मुझसे क्यों नहीं मिलते....मैं तो तुम्हारा प्यारा बेटा हूँ न माँ....मैं तुम्हारा प्यारा बेटा हूँ...." बालक ने कहा।

"हाँ, बेटा, माँ के लिए पुत्र से अधिक प्यारा कुछ भी नहीं होता। पुराणों का कहना है—'पुत्र कुपुत्र हो सकता है, माता कुमाता नहीं हो सकती...." माँ ने विगलित कंठों से कहा। आँखों से आँसू के दो बूँद टपक पड़े धरती पर और वह मूक-मौन शून्य दिशाओं की ओर देखती रह गई।

"अबकी बार पिताजी आवें तो अवश्य मिलाना माँ....मुझसे अवश्य मिलाना। कहना—यह है—आपका प्यारा बेटा और मैं उनके चरणों पर शीश धर दूँगा...."

"पिता के चरणों में शीश झुकाना ही चाहिए...."

"हाँ, माँ, महर्षि ने उस दिन सिखलाया था...."

माँ ने बालक को अपने अङ्क में समेट लिया। मस्तिष्क कोलाहल से भर उठा और वह उलझी रही समस्याओं के तर्क-जाल में।

"पिताजी तो मुझे पहचान लेंगे न माँ...." बालक ने फिर कहा।

"जब मैं पहचानती हूँ तुम्हें, तो कोई कारण नहीं कि तुम्हारे पिताजी न पहचानें ? तुम्हारे अन्तर में यही प्रश्न क्यों बार-बार उठता है, बेटा ?"

"इसलिए कि आश्रम के सखा बार-बार यही प्रश्न उठा देते हैं मेरे सामने। तुम क्या जानो कि मैं कितना दुखी हो जाता हूँ....इस प्रश्न से...."

माँ का हृदय स्नेह से भर उठा, आकुल आँखों की ओर वात्सल्य की धारा को रोक न सकी। अतीत के अगणित स्वप्न क्षण भर में साकार हो उठे। वह मन ही मन सोचने लगी—'इस अबोध शिशु

को क्या उत्तर दिया जा सकता है ? अन्तर के सागर में उठती हुई लहरों को शान्ति दी जा सकती है पर इस निर्दोष का क्या होगा ?' कहने को तो कह दिया 'तुम्हारे पिताजी से अवश्य मिलाऊँगी' अब वह बार-बार हठ करेगा। कैसे समझाऊँगी इसे, क्या उत्तर दूँगी....कई प्रश्न एक साथ ही उसके मानस में उठे और अब माता का ममतामय हृदय भी शिशु-सा अबोध हो गया। वह मूक-मौन आँखों से महाशून्य की ओर देखने लगी। एकाएक कई करुण-चित्र उसकी पलकों पर खिंच गये। रेखायें चुभने लगीं। सहसा उसकी आँखें शिशु की ओर गईं। बोली वह—

"अब सन्ध्या हो चली है। आओ लौट चले पर्ण-कुटी की ओर...."

"तुम्हें भय लगता है माँ ?" बालक ने कहा।

"नहीं, बेटा तुम्हारे रहते भला किसी को भय की आशंका भी हो सकती है ? ना मुझे कोई भय नहीं...."

"तुमने सुना माँ, आज अपने हस्तलाघव से अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को मैंने मन्त्र-मुग्ध कर दिया था। महर्षि देखकर आश्चर्य से चकित हो उठे थे...."

"अच्छा ?"

"तुम्हें विस्मय हो रहा है क्या माँ ? कहो तो अभी दिखा दूँ.... वह देखो, वह जा रहा है, हिरन...."

"ना बेटा, तुम्हारी वीरता और शौर्य में भी कहीं सन्देह हो सकता है....उसे अपने तीरों का लक्ष्य न बनाओ। वह भी मेरी तरह माँ है। रात होने जा रही है और वह अपने अबोध बच्चे के पास जा रही है। उसका बच्चा भी तुम्हारी ही तरह कहीं खेल रहा होगा.... उस हिरन को छेड़ो मत...."

"अच्छा छोड़ दिया माँ....मगर आज से कभी तुम ऐसा नहीं कहोगी न ! मेरा मन न जाने कैसा-कैसा हो रहा है ?"

"अच्छा, बेटा अब से ऐसा कभी नहीं कहूँगी....कभी नहीं...."

"हमलोग अपने देश कब चलेंगे माँ ?"

"जब तुम शस्त्र और शास्त्र में पारंगत हो जाओगे...." कहती हुई माँ ने बालक को अपनी भुजाओं में बाँध लिया ।

"तब पिताजी लेने आवेंगे...."

"चाहिये तो ऐसा ही...."

"क्यों हमलोग कैसे यहाँ आये माँ...."

"यह भी एक विचित्र-कथा है...."

"कैसी कथा...."

"........"

"मुझे कथा सुनाओ माँ । अच्छी-सी कथा सुनाओ...."

"तुम कभी-कभी ऐसा हठ ठान देते हो कि प्राण आकुल हो उठते हैं । अभी तुम बहुत अबोध हो, समझ नहीं सकोगे । जिस दिन तुम्हारी चेतना सयानी हो उठेगी तो कुछ भी कहने की आवश्यकता न होगी...."

"अच्छा माँ, इतना तो बता, हमलोग यहाँ कैसे आये ? इतने ऊँचे शिखर पर कैसे चढ़े...."

"कोई कहीं जाता नहीं....भाग्य स्वयं मनुष्य को खींच ले जाता है...."

"भाग्य कैसा होता है माँ....भाग्य के कितने हाथ कितने पाँव होते हैं ? एक बार उसे अपनी आँखों देखना चाहता हूँ, उसके पँख कैसे होते हैं और उसका माथा कैसा होता है...."

"भाग्य एक अदृश्य शक्ति है, जिसे कोई देखकर भी देख नहीं सकता...." माँ ने कहा ।

"मैं भी एक शक्ति लिए बैठा हूँ। मेरे पास भी शक्ति है। अपनी शक्ति से ही उस अदृश्य शक्ति पर अधिकार करूँगा।"

"हाँ बेटा, इसी को महत्वाकांक्षा और पुरुषार्थ की संज्ञा दी जाती है...."

"उदयन!" किसी ने पुकारा।

"कौन?"

"दर्शक...."

"मेरे अच्छे बन्धु!"

"वन्दना की बेला हो गई और तुम अभी तक...." दर्शक ने कहा।

"चलो माँ, आओ तुम्हारा हाथ पकड़ लूँ, कहीं फिसल न जाओ! देखती हो नीचे की गहराई। विशाल से विशाल वृक्ष नन्हीं-नन्हीं लताओं के समान लगते हैं। आकाश पर तिरनेवाले बादलों के टुकड़े कितने समीप दीख पड़ते हैं। कभी-कभी तो हमारे सामने से ही ये बादल निकल जाते हैं। अभी-अभी पानी पड़ा है। धरती भीग गई है....सँभालकर चलना माँ...." उदयन ने कहा।

"तुम्हारे समान धीर और गम्भीर पुत्र का सम्बल पाकर भला माँ कहीं विचलित हो सकती है?"

"कभी नहीं माँ...." उदयन अपनी माँ की अंगुली पकड़े आगे-आगे चला जा रहा था। अब वह पर्वत की ऊँची चोटी से समतल धरातल पर आ रहा। बोला—

"अब तो तुम सुगमता पूर्वक चल सकती हो न माँ...."

"तुम्हारी सबल छाया जो साथ चल रही है, बेटा...." मृगावती के उत्कंठित कंठ-स्वर दिशाओं में सिहर कर रह गये। आश्रम के समीप आकर उदयन ने पुकारा—

"दर्शक....ओ दर्शक...."

"महर्षि कक्षा में प्रविष्ट हो चुके हैं, उदयन...."

"तुम आगे भाग आये....मुझे छोड़कर...." उदयन ने उलाहना दी।

"आगे आकर तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहा था....हम दोनों को एक ही सूत्र पढ़ने हैं न...." दर्शक बोला।

"अच्छा, माँ अब मैं कक्षा में जाऊँ और तुम निवास-गृह...." उदयन ने कहा। सहसा मृगावती के आकुल-अधर उदयन के कपोलों पर आ रहे। एक नन्हा-सा शब्द उदयन के कानों से छूकर रह गया–

"राजा बेटा...."

"मैं राजा हूँ, माँ...." उदयन का अबोध-हृदय विस्मय से भर उठा।

"हाँ, तू राजा है बेटा, राजा! मेरे सपनों का राजा, मेरी आशाओं और विश्वासों का राजा, मेरे अन्तर में पलती हुई महत्वाकांक्षाओं का राजा, हाँ, अब जा विलम्ब न कर...."

दर्शक के साथ उदयन अपनी कक्षा में प्रविष्ट हुआ। सूत्र पढ़े।

"आज तुम दोनों के आने में विलम्ब हुआ। ऐसा नहीं होना चाहिये। संसार में यदि कोई मूल्यवान वस्तु है तो समय। आने वाला क्षण, जो भविष्य के अङ्क में है, वह आवेगा परन्तु बीता हुआ पल पुनः लौटकर नहीं आ सकता। समय गतिशील जो है...."

"भविष्य में ऐसा अपराध न होगा, ऋषिराज...."

"यदि तुम कुछ क्षण और विलम्ब से आते तो आज के बहुमूल्य पाठ से वंचित रह जाते। अच्छा, आज इतना ही रहे, शेष कल के लिए।"

"........"

"उदयन और दर्शक!"

"आज्ञा हो ऋषि प्रवर...."

"पाठों की आवृत्ति के समय तुमलोगों को इसलिए नहीं टोंका कि मस्तिष्क के विशृङ्खल हो जाने की आशङ्का थी। कल से समय पर ध्यान रहे। काल की गति से ही मनुष्य का जीवन मिट्टी या स्वर्ण का स्वरूप प्राप्त करता है। अब तुमलोग जा सकते हो...." महर्षि जमदग्नि ने आदेश भरे स्वर में कहा।

दर्शक ने उदयन का हाथ अपने हाथ में लिया और दोनों निवास-गृह की ओर चल पड़े।

× × × ×

"तुम्हारे पिताजी नहीं आते बन्धु...."

"न जाने क्यों नहीं आते...." उदयन ने उत्तर में कहा। उदयन के सामने एक समस्या-सी आ खड़ी हुई ऐसी समस्या जिसका कहीं कोई समाधान न हो।

"तुम अपनी माँ से नहीं पूछते ?"

"पूछता हूँ, दर्शक, सदैव पूछता हूँ...."

"तो क्या कहती हैं ?"

"कहती हैं....आवेंगे....अवश्य आवेंगे...."

"यह नहीं पूछा कि वह रहते कहाँ हैं ?"

"नहीं दर्शक, यह नहीं पूछा कभी। आज अवश्य ही पूछूँगा.... बताना पड़ेगा माँ को...." उदयन ने कहा।

"क्या पूछोगे बेटा...." सहसा माँ का स्वर उदयन के कानों को सिहरा गया। उदयन की आँखों में आश्चर्य की आभा चमक उठी।

"माँ...."

"तुम्हारे आने में विलम्ब होते देख स्वयं तुम्हें देखने आ गई...."

"क्या मैं रास्ते में खो जाता कहीं...."

"ऐसा न सोचो बेटा, माँ को, माँ का हृदय ही जानता है कितनी

विवशता होती है। वही विवशता ममता बनकर तुम्हारे पास खींच ले आई....”

“मैं यहाँ की पर्वतमाला के साथ ही वन-प्रान्त से भी परिचित हो गया हूँ। यहाँ की हरी-हरी लताओं की टहनियाँ तक मुझे पहचानती हैं। शीतल-मन्द-समीरण मेरे बालों को सहला जाता है। प्रातः की प्रथम किरण आकर मेरे अलसित लोचनों को खोल जाती है। चन्द्रमा आकर मुझे सुला जाता है....माँ....मेरा पथ मेरे सम्मुख है। मैं कभी खो नहीं सकता....”

“यह तुम कविता बोल रहे हो बेटा....”

“आज महर्षि ने ऋग्वेद की ऋचाओं को बहुत अच्छे ढङ्ग से समझाया कहा—ऋग्वेद् कविता की वह धारा है, वह ज्योति है, जिससे सारा संसार आप्लावित और आलोकित है....”

“वेद की शिक्षा आरम्भ हो चुकी है....”

“हाँ, माँ....दर्शक से पूछो....” उदयन ने कहा और दर्शक ने उदयन का समर्थन किया।

“मेरे बहुत अच्छे बेटा....”

“आज तुम्हें बताना ही पड़ेगा माँ कि पिताजी कहाँ रहते हैं। तुम अब अधिक दिनों तक मुझे भुलावे में नहीं रख सकती....”

“अच्छा, अब मुझे जाने दो मित्र....” कहता हुआ दर्शक अपने निवास-गृह की ओर चल पड़ा।

“तुम्हें इन बातों में कभी नहीं पड़ना चाहिए....”

“क्यों माँ, मैं तुमसे इतना भी नहीं पूछ सकता कि मेरे पिताजी कौन हैं? कहाँ रहते हैं? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो रह-रहकर मेरे प्राणों को कोलाहल और उत्सुकता से भर देता है। मेरे जितनी भी सखा हैं, सबके पिता हैं। सभी आते हैं। मेरे पिता क्यों नहीं आते, माँ....” उदयन ने कहा।

"तुम्हारे पिता लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर साधना में लगे हैं...." मृगावती माँ ने कहा और उदयन का हाथ अपने हाथों में ले लिया।

"तुम्हारे प्रति उनका यह व्यवहार, यह आचरण अच्छा नहीं कहा जा सकता माँ, वे बड़े निर्मम-प्राण हैं। तुम्हें किसी भी दशा में अकेली नहीं छोड़ देना चाहिये था...." उदयन की आँखें भर आई।

"तुम्हारे पिता की भावना से प्रेरित होकर ही मेरा जीवन तप-साधना की ओर झुका। एक रात मैंने सपने में देखा—कोई बहुत बड़ा अनिष्ट होने को है। ऐसा आभास होने लगा कि तुम्हारे जीवन के कल्याण और भविष्य के निर्माण के लिए मुझे गृह-त्याग करना होगा...."

"तुम्हें इतना कठिन संयम और व्रत नहीं लेना चाहिये था। तो क्या तुमने मेरे लिए ही इतने सारे कष्ट सह? यह सुनकर मेरा हृदय फटा जा रहा है, माँ...."

"क्यों? मैंने तुम्हें जन्म दिया है। जीवन और महान कर्तव्य का पथ भी मुझे ही देना है। प्रत्येक माता और पिता को अपनी सन्तान के लिए ऐसा सोचना ही पड़ता है...."

"तुम तो बड़ी अच्छी हो माँ....बहुत अच्छी और बहुत महान इन पर्वतों से महान सीमाहीन आकाश से भी महान...." मृगावती की आँखों से आँसुओं की निर्दोष बूँदे टपक पड़ीं उदयन के कपोलों पर। उदयन ने फिर कहा—

"तुम रो रही हो माँ?"

"कभी-कभी आनन्द की चरम-अनुभूतियों से भी आँखों का आँसू बाहर आ जाता है। क्या तुम्हें ऐसा कभी नहीं होता?"

"ऐसा तो मेरे साथ कभी नहीं हुआ मगर मेरे लिए तुम्हें इतना कठिन व्रत नहीं लेना चाहिये था...."

"तब मेरे उज्ज्वल मातृत्व के भाल पर कलंक का टीका जो लग जाता...."

"यदि आज पिता जी मेरे सम्मुख आ जाते तो मैं पूछता कि आपने मेरी माँ को इतना कष्ट क्यों दिया। फिर देखता कि वह क्या उत्तर देते हैं...."

"उनके पास तुम्हारे प्रश्नों के अनेकों उत्तर होंगे। जब भेंट होगी तो पूछना...."

"अवश्य पूछूँगा माँ....

"दर्शक से तुम्हारी बड़ी मित्रता है...."

"हाँ माँ दर्शक मेरा अंतरङ्ग सखा है। हम दोनों एक ही पाठ पढ़ते हैं...."

"जानते हो दर्शक कौन है ?"

"जानता हूँ माँ, वह मगध का निवासी है..." उदयन बोला।

"और यह भी जानो कि वह मगध का राजकुमार है...."

"मैं कहाँ का राजकुमार हूँ माँ...."

"तुम मेरे राजकुमार हो, मेरे देश के .."

"तुम्हारा कौन-सा देश है माँ....?"

"प्रत्येक माँ के लिए उसका बेटा राजकुमार से भी बढ़कर होता है, उदयन तुम शौर्य और शक्ति का संचय करो। राजा की पूजा या प्रतिष्ठा उसके अपने ही देश में होती है परन्तु विद्वान सारे संसार में पूजा जाता है, आदर पाता है।"

"अनन्त वीर्य, जो पांचाल का राजकुमार है, मेरे ही वर्ग में पढ़ता है। वह मुझे सदा चिढ़ाया करता है। दर्शक कह रहा था— वह मुझसे ईर्ष्या करने लगा है। मुझे देखकर मन ही मन जलता भी है...."

"यह शुभ है, बेटा। विकास और प्रगति देखकर मनुष्य स्वभा-

वतः ईर्ष्या करने लगता है। अनन्तवीर्य को चेष्टा यह करनी चाहिये कि वह कक्षा में तुमसे भी अच्छा कर दिखाये। ऐसा नहीं कर सकता तो उसका जलना व्यर्थ है...."

"दर्शक बहुत मिलनसार और भावुक है, माँ...."

"यह तो मगध की निजी विशेषता है। शौर्य, शक्ति और विद्वता तीनों मानवी गुण हैं। जो इन गुणों से विभूषित है, अभिमान ईर्ष्या और दर्प तीनों उसके पास नहीं आते। आज से नहीं पूर्वकाल से ही मगध इन सभी गुणों में सम्पन्न और समृद्ध माना जाता है। मगध ही में बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई। वर्द्धमान महावीर को नया पथ, पथ की नयी प्रेरणा मिली।"

उदयन बड़े ही मनोयोग सहित माँ की बातें सुनता रहा। उसके अन्तर में पलती हुई भावनाएँ आकुल करने लगीं उसे। मृगावती ने उसे स्नेह देते हुए कहा—

"भोजन कर ले बेटा...."

"तुम्हारी आज्ञा कितनी अच्छी तरह पालन करता हूँ माँ। जब कहती हो—उदयन! विद्यालय का समय हो गया, मैं प्रस्तुत हो जाता हूँ। अभी तुमने कहा—भोजन कर ले और मैं आसन पर आ रहा .. मैं तुम्हारा कितना अच्छा बेटा हूँ, माँ...."

"बहुत अच्छा बेटा इतना अच्छा जितने चाँद-तारे...." कहती हुई माँ की आँखों में आनन्दातिरेक के आँसू उमड़ आये।

"कल हमलोग वन-पर्व मनाने का आयोजन करने जा रहे हैं। तुम भी चलो न माँ...."

"अच्छा चलूँगी, मगर मुझे ले जाकर व्यर्थ कष्ट क्यों उठाओगे...."

"इसमें कष्ट की क्या बात है माँ...."

"तुम्हारा अपना समाज रहेगा, तुम्हारे साथ स्वाधीनता रहेगी और कल मेरा निर्जला-व्रत भी तो है...."

"हाँ, माँ यह तो मुझे स्मरण ही नहीं था...."

"अच्छा बेटा, अब जाकर विश्राम करो...."

"अभी गया माँ दो क्षण और....तुमसे पूछ रहा था....हमलोग यहाँ कैसे आये....आज तो तुम्हें बताना ही होगा...."

"बहुत दिन पूर्व तुमने यही प्रश्न किया था, स्मरण है न ?"

"और यह भी स्मरण है कि तुमने उत्तर में क्या कहा था ?"

"क्या कहा था ?"

'तुमने तो यही कहा था कि भाग्य यहाँ खींचकर ले आया.... मगर यह उत्तर आज स्वयं एक प्रश्न बन गया है माँ...."

"मुझे स्वयं स्मरण नहीं मैं यहाँ कैसे आ गई पर इतना अवश्य स्मरण है—एक रात मैंने सपने में देखा—मैं रुधिर-कुंड में स्नान कर रही थी। एक बहुत बड़ा पक्षी आया और सम्भवत. मुझे मांस-पिंड समझ कर उठा ले गया बहुत दूर आकाश में धरती और क्षितिज से बहुत ऊपर। जब मुझे चेतना हुई तो मैंने अपने को उदयाचल पर पाया...."

"वह कितना बड़ा पंछी था माँ....बहुत बड़ा ?" उदयन ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"ईश्वर की सृष्टि में इतने बड़े-बड़े पक्षी हैं कि मनुष्य क्या हाथी को भी अपनी चोंच में दबाकर उड़ जाँय...."

"यदि तुम समुद्र की गोद में आ जाती तो ?"

"इसीलिए न कहा था—भाग्य जब चाहता है मनुष्य को ले जाता है...."

प्रातः की किरणों ने अँगड़ाई ली और उदयन के सपने टूटे। पलकें खुलीं। देखा—प्राची में सूर्योदय हो चुका है।

दिवस और निशीथ का कार्यक्रम नियमित रूप से चलता रहता है। प्रभात दिवस लिए आता है, संध्या रात्री लिए आती है, सच यह है कि रात के जलने से दिन की लाली और दिन के जलने से रात काली होती रहती है और यह क्रम अबाध-गति से चलता रहता है।

"उदयन !"

"कौन दर्शक ?" मृगावती ने कहा।

"मैं दर्शक हूँ, माता जी...."

"भीतर आ जाओ वत्स...." मृगावती ने द्वार का कपाट खोलते हुए कहा। दर्शक भीतर प्रविष्ट होते ही उदयन के पास पहुँचा और उसे आलिंगन करते हुए बोला—

"चलो, विलम्ब हो रहा है...."

"और कोई है...." उदयन ने पूछा।

"रुमण्वान आगे गया। विचार था उसे भी साथ ले लिया जाता पर वह मेरे प्रस्थान करने के पूर्व ही चल चुका था, भेंट न हो सकी...."

"अनन्तवीर्य ?"

"वह तो अभी-अभी आखेट के लिए गया है...."

"जाने दो, वह पाञ्चाल पर अभिमान करता है। ऐसी ओछी प्रकृति वाले से अपनी कभी नहीं बनी। यह तो तुम अच्छी तरह जानते हो...."

"कोई अपने को कुछ भी समझे। मुझे कभी चिन्ता नहीं होती। यहाँ तो सभी विद्याध्ययन के लिए आए हैं, इसलिए सभी समान हैं। कोई राजकुमार है, तो हुआ करे...."

"वायु का एक झोंका मनुष्य को कहाँ से कहाँ ले जाता है,

कौन जानता। आज का रङ्क कल का सम्राट हो सकता है और आज का सम्राट कल का रङ्क...."

"तुम तो मगध के भावी सम्राट हो दर्शक...."

"और तुम भी तो...." कहते-कहते रुक गया दर्शक।

"विद्वान बनने की महत्वाकांक्षा अवश्य रखता हूँ...."

"विद्वान सम्राट बनना सोने में सुगन्ध...."

"अच्छा चलो...." उदयन बोला।

सहसा दोनों के पग ठिठक से गये।

"माँ...."

"तुम लोग वन-पर्व मनाने जा रहे हो। तुम दोनों के हाथ में अस्त्र-शस्त्र हैं। स्मरण रहे क्षत्रिय-कुमार अपने अस्त्रों और शस्त्रों का दुरुपयोग नहीं करते...."

"तुमने हम लोगों को इतना नादान समझ लिया है...." उदयन ने कहा।

"यह मातृत्व का स्वर है उदयन...." दर्शक ने कहा और उदयन के कन्धे पर हाथ रख दिया। दोनों वन की ओर चल पड़े।

"यह कितना सघन-वन है, दर्शक...."

"बहुत घना....इतना घना कि हाथ नहीं सूझे...."

सहसा उदयन की दृष्टि एक सिंह पर पड़ी जो छलाँगें भरता हुआ आ रहा था। उदयन ने धनुष सँभाला।

"ठहरो उदयन...." तबतक उदयन का अचूक लक्ष्य आखेट को धराशायी कर चुका था। दोनों सिंह के पास पहुँचे कि सहसा किसी का पदचाप सुनाई पड़ा।

"कौन हो तुम....?" एक रोष भरा स्वर दर्शक और उदयन के कानों से टकरा गया।

"मैं मगध का...." दर्शक कहते-कहते रुक-सा गया।

"राजकुमार हो ?...."

"........"

"तुमने मेरे आखेट में विघ्न उपस्थित किया...."

"मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया...." दर्शक बोला।

"बन्दी बना लो इसे...." आदेश भरा स्वर सम्मुख आ रहा।

"नहीं, इसे बन्दी न बनाओ....लक्ष्य मेरा था, इसका नहीं...." उदयन बोला।

"दोनों को बन्दी बना लो .."

"आप कौन हैं....मैं जानना चाहूँगा...."

"सब कुछ जान जाओगे...."

"बिना जाने हम बन्दी नहीं हो सकेंगे...."

"आदेश पालन किया जाय...."

"आप कौन हैं... क्या मैं यह भी नहीं जान सकता ?"

"व्यर्थ वार्ता न करो....मैं कौशाम्बी का राजा सहस्रानीक हूँ...."

सहस्रानीक का आदेश पाते ही सैनिक विद्युत् गति से दर्शक और उदयन पर टूट पड़े। अपनी असफलता होते देख सैनिकों ने हाथियों का सहारा लिया। उदयन ने गज-वशीकरण-कला से हाथियों को अपने अधिकार में कर लिया। सहस्रानीक के क्रोध की सीमा न रही। सहस्रानीक ने उदयन को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया पर उदयन ने अपनी रण-चातुरी से उनके सभी लक्ष्यों को विफल कर दिया। फिर दो बाण ऐसे छोड़े कि क्षण भर में ही सहस्रानीक का शीश धरती पर लोट गया। सैनिकों ने दोनों को बन्दी बना लिया। यह समाचार महर्षि जमदग्नि को मिला। महर्षि ने दोनों पक्ष की बातें सुनीं और निर्णय देते हुए कहा—'दोष सहस्रानीक का ही था। सैनिकों को मगध के राजकुमार को बन्दी नहीं बनाना चाहिये। यह नन्ही-सी भूल अपना भ्रामक रूप ले बैठेगी, किसी

दिन। जिसके चलते कौशाम्बी और मगध में तलवार भी बज सकती है। युद्ध मानव जीवन के पक्ष में कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता। सहस्रानीक के सैनिक कौशाम्बि लौट गये।

उदयन और दर्शक निवास-गृह की ओर चले। उदयन बोला—

"दर्शक, माँ ने कहा था—क्षत्रिय कभी अपने अस्त्र-शस्त्र का दुरुपयोग नहीं करते, हम लोगों ने कोई दुरुपयोग तो नहीं किया ?"

"बाणों का इससे अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है ?"

"माँ पूछेगी...."

"पूछेंगी तो यही उत्तर देना कि अपने प्राणों की रक्षा के हेतु धनुष-बाण तो क्या जीवन का भी उपयोग किया जाता है। नीति यही कहती है और शास्त्र भी...."

उदयन अपने निवास-गृह में प्रविष्ट हुआ। उसके अरुण-कपोलों को चूमते हुए मृगावती ने कहा—

"जभी तुमने तरकस उठाया और वह छूटकर धरती पर गिरा। मुझे आशंका हुई कि कोई न कोई अनिष्ट अवश्यम्भावी है...."

"अपने जीवन की रक्षा के लिए धनुष-बाण तो क्या अपने प्राणों का उपयोग भी करना पड़ता है, नीति और शास्त्रों का यही कथन है..." उदयन ने दर्शक का तर्क दुहराया।

मृगावती मौन-आँखों से उदयन की ओर देखती रह गई। कुछ बोल न सकी। कई भयानक सपने उसकी आँखों में चित्र से बने-मिटे और वह उन चित्रों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं को पढ़ती रही। मृगावती ने मन ही मन कहा—'जिस अनिष्टकारी सम्भावना से भयभीत होकर यहाँ आयी, वह सम्मुख आकर ही रही।'

"मैंने बाणों का दुरुपयोग तो नहीं किया माँ...." उदयन ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा।

मृगावती ने दर्शक के माथे पर हाथ रख दिया। दर्शक के लोचन धरती में जा गड़े। उदयन बोला—

"माँ ने तो हमारी आशाओं पर पानी छिड़क दिया। हम लोग इतने उत्साह से आ रहे थे कि माँ को प्रसन्नता होगी। यह मेरे जीवन का प्रथम युद्ध था और मैं अपने प्रथम आक्रमण में ही विजयी होकर आया हूँ...."

"वह देखो रुमण्वान भी आ गया...." दर्शक बोला।

"तुम्हारे पौरुष को कौन अस्वीकार कर सकता है...." मृगावती के लोचन भर आए।

"आज तुम्हारी सफलता के लिए साधुवाद देने आया हूँ उदयन...." रुमण्वान ने कहा।

उदयन ने एक बार रुमण्वान की ओर आँखें उठाकर देखा और देखकर रह गया।

"रुमण्वान...." उदयन का गीला स्वर था।

"क्षत्रिय-कुमार यों विचलित नहीं हुआ करते, उदयन...." रुमण्वान बोला।

"अच्छा उदयन अब हम चलें...."

"माँ...." उदयन बोला।

"उदयन तुमने अपने कर्तव्यों का पालन किया है...." कहती हुई मृगावती ने उदयन को चूम लिया।

दर्शक और रुमण्वान चले गए। मृगावती की आँखों में आँसू छलक आए। बाहुल-प्राण आन्दोलित हो उठे। उदयन ने देखा और कहा—

"बार-बार तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों आ जाते हैं माँ। तुम्हें क्या कष्ट है?"

"सांसारिक कष्टों से मेरी आँखों में आँसू नहीं आते बेटा, जब-

जब असीम आनन्द का अनुभव करती हूँ, मेरी आँखें भर आती हैं, क्या तुम्हें कभी ऐसा नहीं होता ? ऐसे क्षण कभी तुम्हारे जीवन में नहीं आए ?"

"बहुत बार माँ...."

"अब तुम्हारा विद्याभ्यास भी समाप्त हो चुका है। मैं अपने देश के सपने देख रही हूँ...."

"हाँ, माँ अब मेरा मन भी यहाँ नहीं लगता फिर भी यहाँ की प्राकृतिक घटाओं और अपने अन्तरङ्ग सखाओं में एक ऐसा आकर्षण हो गया है कि...." कहते-कहते उदयन ने अपने को रोक लिया।

"रात मैंने सपना देखा है...."

"कैसा सपना माँ ?"

"ऐसा सपना जैसा तुम नित्य देखा करते हो...."

"तुमने कहा था कि जब तुम्हारा अध्ययन समाप्त हो जायगा तो पिता जी आवेंगे। अध्ययन तो कभी समाप्त नहीं हो सकता। जबतक जीवन है, तबतक अध्ययन....पिता जी कब आवेंगे माँ ? लगता है, तुम सदैव मुझसे कुछ छुपाती हो...."

"यदि माँ कुछ छुपाती है या छुपाकर रखती है तो अपने बेटे के लिए, किसी अन्य के लिए नहीं...."

"तुम कितनी अच्छी हो माँ ?"

"जितना अच्छा तू...."

उदयन माँ से लिपट गया। बोला—

"नहीं माँ, मैं उदयाचल पर ही रहूँगा। दर्शक और रुमण्वान को छोड़कर मैं कहीं नहीं जा सकता।"

"दर्शक तो मगध का राजकुमार है...."

"वह राजकुमार है तो हुआ करे, मैं भी कोई देश जीत कर

राजा बन जाऊँगा। तुम तो जानती हो न कि राजकुमार से राजा कितना महान होता है...”

“हाँ, मैं जानती हूँ...बलपूर्वक किसी देश को जीतकर वहाँ की जनता पर शासन नहीं किया जा सकता...”

“मैं न्याय और प्रेम से विजय प्राप्त करूँगा...”

“जीवन का सत्य और कर्त्तव्य दोनों तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगे, बेटा...।”

“मेरा आत्म-बल और तुम्हारा आशीर्वाद दोनों मिलकर मुझे नई प्रेरणा देंगे...”

“तुम्हारी आकांक्षा और अभिलाषा को ईश्वर बल देगा... सफलता का प्रत्येक क्षण तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है...”

“माँ...” उदयन का स्वर उल्लास से भर उठा था।

“तब तो तुम्हारी आँखों में आँसू नहीं उमड़ेंगे ?”

“क्यों ?”

“मैं राजा बन जाऊँगा...”

“और मैं तुम्हारे लिए रानी खोजूँगी मगर तुम कौन-सा देश जीतोगे ?” उदयन उज्जयिनी की राजकुमारी वासवदत्ता के बारे में कई कुमारों से सुन चुका था। उसकी आँखों में वासवदत्ता सपना बनकर उतर गई।

“अनन्तवीर्य को पराजित करूँगा। मैंने एक दिन कहा था कि मित्र मैं तुम्हारे देश पर अपनी सेना लेकर आऊँगा और हम दोनों सखा युद्ध करेंगे...”

माँ का हृदय भर उठा, आशाओं और विश्वास भरी अभिलाषाओं से वह देखने लगी। उदयन की सुमनों-सी आकृति पौरुष की छाया में बदल गई थी। उसके उन्नत कपलों पर विचारों और भावनाओं की रेखाएँ खिंच-मिट रही थीं।

"वह कई बार मेरे पौरुष को ललकार चुका था..."

"इसका तो अर्थ यह नहीं कि वह तुम पर आक्रमण कर चुका था।"

"वह बार-बार कहता है..."

"कहने दो..."

"रुमण्वान आये तो पूछ लेना, मैं मिथ्या नहीं बोल रहा हूँ, माँ।"

"यह मुझे विदित है, तुम मिथ्या नहीं बोल सकते..."

"यदि वह पाञ्चाल का युवराज है तो हुआ करे। सोने के सिंहासन पर बैठ जाने से ही मनुष्य सम्राट नहीं बन जाता यदि उसके पास क्षमता और उदारता नहीं...क्यों माँ..."

"तुम्हारा कहना युक्तिसंगत है....परन्तु अधिकारों का दुरुपयोग किसी भी पक्ष से नहीं होना चाहिए। वीरों का वीरोचित कर्म ही वन्दनीय है..."

"वीरोचित कर्म ही वन्दनीय है..." उदयन ने दुहराया।

"इन छोटी छोटी बातों को अपने हृदय में स्थान न देना ही वीरता है..."

"सच कहती हो माँ तुम सच कहती हो..."

"जब तुम अपने देश लौटोगे तो तुम्हारे समक्ष भी कई ऐसी समस्याएँ आवेंगी, जिनके चलते तुम्हें कष्टों का सामना करना पड़ेगा। अभी तुम्हारा विद्यार्थी-जीवन है। जीवन में कई ऐसे उत्तरदायित्व हैं, जिनमें उलझ जाना पड़ता है।"

"तुम्हारा आशीर्वाद मुझे पथ देगा और तुम्हारा प्रेम मुझे जीवन। आत्म-विश्वास तुम्हीं से मिला है....।"

"माँ आशीर्वाद के अतिरिक्त और क्या दे सकती है?"

"सब कुछ माँ...." और उदयन ने कहा। माँ से लिपट गया।

दो

"ये कौन लोग आ रहे हैं माँ! महर्षि भी साथ हैं, आगे-आगे चल रहे हैं, मुझे ऐसा लगता है—उस दिन आखेट में जो मेरे बाणों का लक्ष्य हो गया था वही तो नहीं है। आकृति मिलती-जुलती है। आओ न माँ, देखो न मेरे धनुष और बाण दे दो। यदि मुझ पर अचानक आक्रमण हो गया तो फिर क्या करूँगा?" उदयन धनुष-बाण लिए निवास-गृह के बाहर आ गया।

"उदयन!" मृगावती ने पुकारा।

"वे लोग बहुत समीप आ गए माँ...."

उदयन अपने द्वार पर खड़ा-खड़ा आगत सज्जनों की गति-विधि पर सोचता-विचारता रहा। महर्षि के चरण धीमे-धीमे धरती पर पड़ रहे थे। महर्षि के पीछे-पीछे कई अपरिचित आकृतियाँ उनका अनुसरण कर रही थीं। उदयन के प्राणों में एक ही साथ कई प्रकार की भावनाओं का स्रोत उमड़ा। कई समस्याएँ आईं। वह अपने स्थान से विचलित न हुआ। कभी उसकी दृष्टि अपनी माँ की ओर जाती, कभी आने वाले जन-समूह की ओर।

"उदयन..." माँ का आदेश भरा स्वर था।

"माँ..."

"आओ मेरे पास...."

"वे बहुत समीप आ गए माँ..."

"मेरा आदेश पालन करो। धनुष और बाण लिए मेरे पास आ जाओ...." उदयन धनुष और बाण लिए माँ के पास आ रहा। माँ ने पुनः कहा—

"धनुष और बाण मुझे दे दो..."

"तुम भी चलाना जानती हो माँ..."

"अवश्य जानती हूँ..."

"मगर यह काम तो मेरा है, मैं क्षत्रिय हूँ..."

"यह काम मेरा भी है इसलिए कि मैं क्षत्रिय की माँ हूँ, क्षत्राणी हूँ..." मृगावती ने कहा और अधरों पर मुस्कान की रेखाएँ खिंच गईं। आज उसके सपने साकार हो उठे।

"क्यों माँ आज तुम बहुत प्रसन्न दीख रही हो" उदयन ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"आज मेरी प्रसन्नता मेरे पास आ रही है और तुम्हारी तुम्हारे पास। एक युग से भी अधिक समय तुम्हें देखकर ही आँखों में भर ली थी। वह देखो तुम्हारे पिताजी आ रहे हैं...."

उदयन की आँखों में हर्ष और उल्लास के स्वर बोल उठे। एक ही क्षण में एक युग की लम्बी अवधि उसके समक्ष आ खड़ी हुई। उदयन को लगा जैसे वह बहुत थोड़े ही समय में जीवन के विस्तृत पथ को पार कर गया है। वह कभी बाहर देखता, कभी अपनी माँ की ओर, माँ की अकुलायी आँखों की ओर।

वह मन ही मन माँ की बार-बार कही हुई पंक्ति को दुहराने लगा—'आनन्द के अतिरेक में भी आँखों में आँसू आ जाते हैं....' वह बोल उठा—

"तुम्हारी आँखों में आँसू नहीं आये माँ....आनन्द के आँसू...." कि अचानक उदयन के हाथों में दो बूँद टपक पड़ीं।

"पिताजी आ रहे..." उदयन खिल उठा।

"उदयन..." मृगावती ने उदयन को अपने आलिङ्गन में बाँध लिया।

"पिता जी कौन हैं माँ...बताओ तो..." उदयन की आकुलता बढ़ी जा रही थी।

"तुम अपने पिता को नहीं पहचान पाते ?"

"तुम मुझे न बताओ माँ, मैं स्वयं पहचान लूँगा..." कहता हुआ उदयन महर्षि की ओर दौड़ पड़ा। महाराज शतानीक से न रहा गया, जैसे उनके पाँवों में पंख लग गए हों। उदयन अपने पितृ-चरणों पर गिर पड़ा। महाराज ने उसे उठाकर वक्ष से लगाया और उसके उन्नत कपोलों को चूम लिया।

"यह रहा उदयन। उदयन आपकी धरोहर है महाराज, इसे स्वीकार कीजिए और यह रहीं आपकी साम्राज्ञी इन्हें भी...." महर्षि जमदग्नि ने कहा।

"उदयन आपकी कृपा का फल है, महर्षि..."

"उदयन को शस्त्र और शास्त्र-ज्ञान के साथ ही ललित-कलाओं का अच्छा ज्ञान हो चुका है। वेदों के अध्ययन में इसकी बहुत अभि-रुचि रही है। इन सबके अतिरिक्त न्याय, सांख्य, इतिहास आदि विषयों की विशेष जानकारी भी रखता है...." महर्षि जमदग्नि ने उदयन के माथे पर हाथ रखते हुए कहा।

महाराज शतानीक की प्रसन्नता की सीमा न थी। मृगावती को वियोग की लम्बी अवधि काटनी पड़ी थी। वह अपनी अधखुली आँखों से निहार रही थी। हृदय भरा जा रहा था। कभी-कभी वह ऐसा अनुभव करती जैसे सपना देख रही हो।

"आप विश्राम करें...यात्रा में बहुत कष्ट हुआ होगा...." महर्षि ने कहा।

"गुरुदेव...." महाराज शतानीक ने कहा।

महर्षि जमदग्नि अपने आश्रम की ओर विदा हुए।

"राजन्...." मृगावती ने कहा और उनके चरणों पर गिर पड़ी। महाराज ने रानी मृगावती को अङ्क में बाँध लिया। आकुल-आँखों से अश्रु-धारा बह चली।

"यात्रा में तो आपको बहुत कष्ट हुआ होगा...." मृगावती ने कहा।

"तुमने उन सारे कष्टों को वहन कर लिया फिर मेरा क्या पूछना...."

"उदयन..." मृगावती का स्वर था।

"........"

उदयन कुछ बोला नहीं। वह चुपचाप अपनी माँ की ओर अबोध-शिशु की तरह अपलक पलकों से निहारता रहा। उदयन की आँखों में एक ही बार रङ्ग-विरङ्गे सपनों की माला झूल गई। वह आनन्द में इतना आत्म-विभोर हो उठा कि उसे अपनी सुधि न रही।

सम्राट शतानीक ने रानी मृगावती की ओर उल्लास भरी दृष्टि से देखा। मृगावती ने कहा—

"राजा बेटा ऐसा नहीं करते...."

"माँ....कोई आदेश है...."

"अब तो तुम पिता जी के प्रश्न पर मुझसे विवाद न करोगे?"

"नहीं माँ...."

"तुम्हें कुछ पूछना भी है पिता जी से?"

"पूछना तो बहुत कुछ है, अभी शीघ्रता की क्या बात है। कल प्रातःकाल पिता जी से वार्तालाप करूँगा..." उदयन ने कहा।

"मुझसे किसी ऐसे विषय पर शास्त्रार्थ न करना, जिसे मैं न जानता होऊँ...."

"मैं आपसे उसी विषय में पूछूँगा जिसे आप जानते हैं...."

"यदि तुम विषय पहले से कह दो तो मेरे लिए उपकार की वस्तु हो....क्यों...." महाराज ने मृगावती की ओर देखते हुए कहा।

"कह दे बेटा...."

"और वह माँ होगी...." उदयन ने कहा और स्नेह भरी दृष्टि से अपनी माँ की ओर देखने लगा। माँ की आँखों से अश्रु-धारा प्रवाहित हो रही थी। महाराज शतानीक मूक-मौन, अपलक पलकों से शून्य दिशाओं की ओर निहार रहे थे। उदयन से न रहा गया। वातावरण का मौन भङ्ग करते हुए उदयन ने फिर कहा—

"फिर तुम्हारी आँखों में आँसू आ गए माँ...."

मृगावती चुपचाप धरती की ओर निहारती रही। उसके लोचनों में अनुराग की छाया थिरक रही थी। शतानीक ने उदयन की ओर देखा।

"माँ...." उदयन का करुणापूर्ण स्वर मृगावती के अन्तर को स्पर्श कर गया।

"तुमसे कहा था न....आनन्द के अतिरेक में भी आँखें छलछला आती हैं उदयन, तुमसे कहा था न...." मृगावती ने उदयन को आश्वस्त करते हुए कहा।

"आपको इस स्थान का पता कैसे मिला?"

"सँपेरा से जिसे तुम्हारा आभूषण मिला था...."

"हाँ, पिता जी....एक दिन वन में मैं हरिन का आखेट करने गया। देखा एक सँपेरा बड़ी निर्दयता के साथ सर्प को पकड़े था और वह छटपटा रहा था, जैसे अपने प्राणों की भिक्षा माँग रहा हो। मुझे उस सर्प को देखकर बड़ी दया आ गई। किसी भी मूल्य पर उसकी रक्षा का भाव मेरे मन में उत्पन्न हो उठा। वह सपेरा भी ऐसा था कि मेरी एक भी सुनने को नहीं। मैंने उससे बड़ी-

बड़ी प्रार्थनायें की। मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि आखेट के प्रति इस प्रकार का मोह बरबस उत्पन्न हो ही जाता है। ऐसी स्थिति मेरे मानस में कई बार आ चुकी है। सर्प कभी-कभी अपनी जिह्वा निकाल कर उससे विमुक्त होने की चेष्टा कर रहा था। सँपेरा उसे अपनी सबल मुट्ठी में बाँधे था। सर्प ने मेरी ओर देखा मानो वह अपने जीवन के लिए सहायता की भिक्षा माँग रहा हो। उसकी छोटी-छोटी कोमल और निर्दोष आँखें बारम्बार मेरी ओर निहार रही थीं। मैंने उससे अनुनय की। कहा—तू इसे मुक्त कर दे। वह इसके लिए प्रस्तुत न था। वह कहने लगा—यह मेरी जीविका का प्रश्न है। मैं दरिद्र हूँ। सर्प-क्रीड़ा से अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करता हूँ। मेरे पास एक सर्प और पहले से था, जिसकी मृत्यु हो गई। कठिन परिश्रम और प्रतीक्षा के पश्चात मेरी यह जीविका मिली है, मन्त्र और औषधि-प्रयोग के द्वारा इसे अपने अधिकार में किया है....इसे मैं मुक्त नहीं कर सकता। मेरे पास माँ का दिया हुआ एक आभूषण था। सँपेरा को देकर उस सर्प को मुक्ति दिलाई। वह प्रसन्न होकर चला गया।

सर्प बोल उठा—'आपने मेरी रक्षा की है, इसके लिए आपका कृतज्ञ हूँ।' उसने आगे कहा—"मैं वासुकि का भाई वासुनेमि नाग हूँ, आपने मेरी रक्षा का भार वहन किया है। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ....यह वीणा स्वीकार कीजिए...."

"और वही सँपेरा दैवयोग से कौशाम्बी पहुँचा आभूषण के विक्रय के लिए। सैनिकों ने उसे बन्दी बनाकर मेरे समक्ष प्रस्तुत किया। सँपेरा ने उदयाचल की समस्त घटनाओं का वर्णन किया। मेरी उत्कण्ठा जाग उठी। प्राण आन्दोलित हो उठे और मैं यहाँ आ पहुँचा...." महाराज शतानीक ने कहा।

"न जाने क्यों उदयन को उस वीणा से इतनी ममता हो गई

है। वीणा लिए सोता और जागता है। अवकाश के क्षणों में वीणा बजा-बजाकर मन को बहलाता है। उस वीणा का स्वर भी इतना मादक और मधुर है कि सदैव सुनते रहने का मन करता है....” रानी मृगावती ने कहा।

सम्राट शतानीक अपलक-पलकों से उदयन के ऊँचे मस्तक और अरुण-कपोलों की ओर देखते रहे। उदयन के समक्ष बीते क्षणों की सजल-स्मृति साकार होकर खड़ी थी और वह देख रहा था मौन-आँखों से।

“वीणा ले आऊँ पिता जी ?”

“हाँ उदयन ले आओ। मैं भी सुनूँ, तुम कैसे बजाते हो ?”

उदयन के चरण उठे। दूसरे क्षण वह वीणा लिए सामने खड़ा था। तारों पर अँगुलियाँ फेर दीं उसने और शून्य वातावरण झंकृत हो उठा। दो अटपटे तार जो बहुत दिनों से एक साथ नहीं बज रहे थे बज उठे।

आकाश में उड़ते हुए पंक्षियों ने सुना वे बरबस ठिठक कर वृक्षों के तना पर आ रहे। दिशाओं ने सुना, प्रत्युत्तर में प्रतिध्वनि गूँज उठी। पथ पर चलते हुए पथिकों ने सुना। उनके चलते हुये चरण चलते-चलते अकस्मात् रुक-से गए।

वीणा के मधुर-मधुर स्वर से धरती भीग उठी और वह आकाश को बाहों में बाँध लेने के लिए ऊपर की ओर उठी। देखते-देखते दशो दिशायें एकाकार हो गईं।

उदयन की अंगुलियाँ द्रुत-गति से तारों पर थिरक रही थीं।

वीणा की मादक स्वर-लहरी ने सम्राट शतानीक को तन्मय कर दिया। क्षितिज के नीले-पथ पर चलती हुई राजहंसो की पंक्ति ठिठक गई।

“बहुत अच्छा बजाते हो....”

"उदयन के लिए न जाने मुझे कितनी यातनायें उठानी पड़ीं, कितने कष्ट सहने पड़े, जिनकी कल्पना मात्र से मेरा रोम-रोम सिहर उठता है...."

"फिर तुम्हारी आँखों में आँसू आ गए माँ....तुम्हारी आँखों में...."

"तुमसे तो बार-बार कहा है कि आनन्द जब चरम-सीमा पर पहुँच जाता है तो बरबस आँखों में आँसू आ हो जाते हैं, तुम इन्हें किसी भी मूल्य पर रोक नहीं सकते...."

"उदयन!"

"पिताजी...."

"तुमने इस लम्बी अवधि में क्या-क्या उपार्जन किये...."

"महर्षि की महती कृपा और आशीर्वाद पाकर थोड़ा-समर शास्त्र और शास्त्रार्थ की योग्यता प्राप्त हुई। शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक बल के साथ ही नृत्य, गीत और अभिनय आदि की शिक्षा प्राप्त की।"

"और कुछ?"

"आपने मेरे सखा दर्शक को देखा?"

"नहीं तो...."

"बुलाऊँ उसे? वह मेरा बहुत ही अन्तरंग सखा है। मैं उसकी अनुपस्थिति में एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकता। वह भी मेरी तरह ही....हमदोनों एक दूसरे से इतना घुलमिल गये हैं कि कभी पृथक होने के ध्यानमात्र से सिहर उठते हैं। वह बहुत भावुक और सहृदय बन्धु है। उसके पास बहुत बड़ा हृदय है।"

"और तुम्हारे पास कितना बड़ा हृदय है बेटा...."

"जितना बड़ा दर्शक के पास....आप दर्शक को जानते हैं...."

"जानता हूँ, वही न जो मगध का राजकुमार है?"

"आप कैसे जानते हैं कि वह मगध का...."

"ऐसे जानता हूँ कि तुम भी राजकुमार हो...."

"मैं राजकुमार हूँ....किस राजा का राजकुमार ?"

"कौशांबी के राजकुमार...."

"कौशांबी कहाँ है पिताजी ?"

"यमुना और गङ्गा का नाम सुना है...."

"भला गङ्गा और यमुना का नाम भी मैं नहीं जानूँगा। मैं यमुना और गङ्गा की उत्पत्ति की कथा तक जानता हूँ...."

"कौशांबी यमुना के किनारे पर ही अवस्थित है। जैन तीर्थंकर महावीर ने कौशांबी की यात्रा भी की थी...."

"माँ ने यह सब कुछ भी नहीं बताया....क्यों माँ तुमने मुझे सदैव अन्धकार में रक्खा। इससे तुम्हें क्या मिला ?"

"इससे मिला तुम्हारे जीवन का विकास और एक ऐसी शक्ति, जो आर्यावर्त्त के कम ही राजकुमारों के पास होगी। तुमसे इन वस्तुओं को गुप्त रखने का एक और कारण भी है। यदि तुम इन सारी स्थितियों से अवगत हो जाते तो न जाने तुम्हारे अन्तर में कैसा भयङ्कर कोलाहल छा जाता। भविष्य मनुष्य के हाथ में नहीं होता न ?"

"दर्शक को बुलाऊँ पिताजी ?"

"अवश्य बुलाओ...."

उदयन ने अपनी माँ की ओर एक बार देखा और चञ्चल-चरणों से दर्शक के निवास-गृह की ओर चल पड़ा। प्रमुख द्वार पर पहुँचते ही पुकारने लगा—

"दर्शक....दर्शक...."

"कौन उदयन...." कहता हुआ दर्शक बाहर आ रहा।

"आओ चलो, पिताजी आए हैं....आओ चलें...," उदयन ने कहा।

"तुम्हारे लिए क्या-क्या ले आए हैं?"

"मेरे लिए वह स्वयं आए हैं और चाहे कुछ लावें या न लावें...."

"तब तो तुम उनके साथ चले जाओगे न?"

"तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जा सकूँगा, दर्शक....ऐसा क्यों सोचने लगे?"

"तुमने तो कहा था—जब मेरा अध्ययन समाप्त हो जायेगा तो पिताजी मुझे लेने आवेंगे। अब तो अध्ययन भी समाप्त हो चुका है...." कहते हुए दर्शक की आँखों में आँसू आ गए।

"यह क्या, तुम रोने लगे दर्शक...."

"पिताजी आए हैं, रोने क्यों लगूँ ..." उदयन ने कहा और मन ही मन सोचने लगा—आनन्द के अतिरेक में भी आँसू आ जाते हैं आँखों में....

उदयन ने अपने उत्तरीय से दर्शक की आँखें पोंछकर कहा—

"आओ दर्शक...."

दर्शक और उदयन चल पड़े।—दर्शक को ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे उसके पाँवों में पत्थर बाँध दिया गया हो। उसके पाँव उसके भार से उठाये नहीं उठ रहे थे। उदयन जैसा अन्तरङ्ग सखा, जिसके साथ उसके जीवन का एक भाग बीत गया, उससे बिछुड़ने की अज्ञात आशंका से मन विचलित हो रहा था।

"यह रहा मेरा अन्तरङ्ग सखा दर्शक...." दर्शक को पिता जी के समक्ष उपस्थित करते हुए, उदयन ने कहा। दर्शक ने सम्राट शतानीक के चरणों का स्पर्श किया। सम्राट शतानीक ने कहा—

"उदयन ने तुम्हारी चर्चा की और मैं तुम्हें देखने को आकुल हो उठा...."

"आपके दर्शन से कृतकृत्य हुआ ..." दर्शक ने मौन धारण कर लिया। उसकी आँखें मिट्टी में गड़ी तो गड़ी ही रह गई। अनजाने में आँसू के दो-चार फूल धरती पर गिरे, गिरे और बिखर गये।

"तुम्हारी आँखों में आँसू कैसे दर्शक ?"

"सम्राट...."

"मिलन बहुत प्राचीन है, वियोग भी नया नहीं। एक पंथ पर अनेकों पथिक परस्पर परिचित हो जाते हैं तो क्या वे भावनाओं में बहने लगते हैं ? उदयन की भी वही स्थिति हो रही है। एक ओर मगध का भावुक राजकुमार और दूसरी ओर कौशाम्बी का हृदय है। आँसुओं के गीले तारों से तुम दोनों एक सूत्र में बँधो ऐसा मैं नहीं चाहता वरन् यह अपेक्षा रखता हूँ कि तुम दोनों का पुरुषार्थ दोनों को परस्पर जीवन और कर्त्तव्य के सबल सूत्र में बाँधे...."

"जीवन के कुछ ऐसे क्षण, जहाँ से नये जीवन का आरम्भ होता है—सुख और दुख के साथ बीते हैं—एक कक्षा में एक सूत्र का अभ्यास, आखेट, वन-पर्व, संगीत और सांस्कृतिक चर्चा, आज सभी शूल बनकर मस्तिष्क में चुभ रहे हैं...."

"मेरे आशीर्वाद लो दर्शक, तुम दोनों का स्नेह-सूत्र अचल रहे। अपने जीवन के पथ पर अपनी समस्त आकांक्षाओं और अभिलाषाओं के साथ बढ़ो...."

"मैं तो यह चाहता था—कि दर्शक जब सम्राट हो जायेगा तो मैं उसका मन्त्री बनकर ही रह लूँगा...." उदयन ने कहा।

"यदि मुझसे कोई यह पूछे कि तुम क्या लोगे मगध का साम्राज्य या उदयन तो मैं निर्भय होकर उदयन का नाम बता दूँगा...."

"दर्शक...."

"तुम दोनों राजकुमार हो। मगध और कौशांबी की आशायें तुम्हें बड़ी आकुलता के साथ निहार रही हैं। यह दो अभिन्न हृदयों की चरम-सीमा है। दर्शक ने मुझे बहुत प्रभावित कर लिया है। जब तुम दोनों का हृदय एक-दूसरे के पास सुरक्षित है फिर वियोग और उसकी अनुभूतियों का कोई प्रश्न नहीं उठता....।"

"हम दोनों एक दूसरे के जितने समीप हैं, रुमएवान भी उससे तनिक न्यून स्थान नहीं रखता। उसे तो मैं यहाँ से ले ही जाऊँगा।"

"कौन रुमएवान्...." सम्राट शतानीक ने उत्सुकता प्रकट की।

"रुमएवान भी मेरे ही वर्ग का विद्यार्थी है। उसकी शिक्षा भी समाप्त हो चुकी है।"

"वह देखिये सम्राट रुमएवान आ गया...."

"पिताजी हैं, रुमएवान...." उदयन ने कहा। रुमएवान सम्राट शतानीक के चरणों पर झुका।

"आयुष्मान, अभी-अभी तुम्हारी चर्चा चली और तुम आ गये। तुम्हारी आयु बहुत लम्बा है। तुम्हारे ललाट की रेखायें भी कुछ ऐसा ही कहती हैं...."

"गुरुजनों के आशीर्वाद और स्वजनों का स्नेह पाकर ही अब तक जीवित हूँ....राजन्...."

"रुमएवान!"

"आज्ञा हो सम्राट...."

"मेरे शासनकाल में यौगंधरायण ने महामात्य का कार्य सम्पादन किया। अभी भी वे अपना कर्तव्य न्याय और सत्य के मापदण्ड के साथ करते जा रहे हैं। मैंने सदैव उन्हें भ्राता के रूप में देखा है, आज भी देखता हूँ। स्वयं उनका व्यवहार भी कभी शिथिल नहीं हुआ। समय और असमय में अपने न्यायोचित सद्विचारों से मेरी

सहायता करते रहे। क्या मैं तुमसे आशा करूँ कि तुम चिरजीवी उदयन को अपना सौहार्द्र और साहचर्य दे सकोगे....?"

"मेरा व्यक्ति और व्यक्तित्व उदयन से कभी भिन्न नहीं हो सकता। उदयन मेरा अंतरङ्ग सखा और अभिन्न है। उदयन के जीवन और जीवन के भविष्य के लिए मैं अपना सर्वस्व समर्पण कर सकता हूँ, साहचर्य ता बहुत साधारण-सी वस्तु है...."

"यौगन्धरायण अपने स्थान पर ज्यों के त्यों बने रहेंगे। शासन का भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया है। महामात्य के सहयोग से मुझे कभी किसी अन्देशा को आशङ्का न रही। रुमण्वान तुम्हारी स्वीकृति पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।"

"मेरी स्वीकृति की क्या चर्चा! सब कुछ आपका आदेश है, ऐसा आदेश जो स्नेह और कृपा से भरा हुआ है...." रुमण्वान ने कहा और सम्मान में सम्राट के आगे अपना शीश झुकाकर उदयन की ओर देखने लगा।

"आज जब से तुम लोगों के बीच आया हूँ, जी में आता है, कौशाम्बी छोड़कर अपना जीवन तुम्हीं लोगों को अर्पित कर दूँ...."

"उदयन से एक ऐसा अपराध हो गया है...." कहते-कहते मृगावती ने अपने को रोक लिया।

"कैसा अपराध माँ....कहो न....आधी बात कहकर रुक क्यों गयी...." उदयन की उत्कंठा तीव्र हो उठी।

"उदयन का अपराध नहीं था। भविष्य जब जो चाहता है, करा देता है। वह उदयन के जीवन का प्रथम युद्ध था। यदि उस स्थिति में मैं स्वयं उसका लक्ष्य बन गया होता तो भी वह अपराधी नहीं कहा जाता। तुम्हारी आशङ्का सच निकली; तुम्हारे सपने सच निकले...."

उदयन ने दर्शक की ओर देखा और दर्शक ने उदयन की ओर

दोनों के लोचन भर आए। उदयन के सामने माँ की वह पंक्ति एक लम्बी रेखा खींचती हुई दूर-सुदूर अंतरिक्ष की ओर चली गई—"क्षत्रिय-कुमार अस्त्र-शस्त्र का दुरुपयोग नहीं करते...."

"तुमने जिन्हें वन-पर्व में अपने बाणों का लक्ष्य बना दिया था जानते हो वह कौन थे?"

"कौन थे माँ?"

"तुम्हारे सगे काका...." मृगावती ने कहा और अपनी आखें बन्द कर ली।

उदयन की आकृति पर जघन्य अपराध की घनी छाया छा गई। वह हतप्रभ-सा, मूक-मौन आँखों से माँ की ओर देखता रह गया। आर्द्र-स्वरों में बोला—

"माँ मैं अपराधी हूँ; ऐसा अपराधी जिसे कभी क्षमा नहीं किया जा सकता...."

"तुम लोग अन्याय के पथ पर न थे। न्याय की याचना या परिणाम के लिए किया गया अपराध कभी अपराध नहीं कहा जाता। ऐसा अपराध कर्त्तव्य की सीमा में आ जाता है....उदयन....विचलित न हो, तुम क्षत्रिय-कुमार हो। क्षत्रिय-कुमार की आँखों में आँसू आना ही सबसे बड़ा अपराध है...."

"मुझे इसके लिए घोर पश्चात्ताप है, वह मेरी पराजय थी, विजय नहीं...."

"उस विजय और पराजय का निर्णय तुम्हारे पास नहीं.... महर्षि जमदग्नि के शब्दों में है, जो तुम जानते हो... मैं इसके लिए लज्जित हूँ कि मेरे सैनिकों ने राजकुमार दर्शक को बन्दी बना लिया...."

"आपकी आत्मा बहुत महान है, राजन्....बहुत महान...." दर्शक बोला।

"जाने दो इन समस्याओं को...."

"तुमने बराबर मुझे भ्रम में उलझाये रखा। मेरे बार-बार पूछने पर भी तुमने कुछ स्पष्ट नहीं किया...."

"मैंने तुमसे कहा न? इन रहस्यों का उद्घाटन हो जाना तुम्हारे लिए अशुभ की सूचना हो सकती थी...."

× × ×

"तो क्या आज हमलोग उदयाचल से प्रस्थान कर जायेंगे?"

"हाँ, उदयन कुछ ऐसी ही विवशता है...."

"............"

"सारी कौशाम्बी तुम्हें देखने के लिए आकुल हो रही है। इसके अतिरिक्त आस-पास के राज्यों की स्थिति भी चिन्तनीय हो रही है। कई सङ्कटापन्न परिस्थितियाँ भी कौशाम्बी के समक्ष उपस्थित हैं। ऐसी दशा में मेरा बाहर रहना उचित नहीं। महामात्य यौगंधरायण भी मेरे ही साथ आए हैं...."

"महामात्य यौगंधरायण कहाँ है राजन्?" मृगावती बोली।

"महर्षि जमदग्नि से अपनी शङ्काओं के समाधान में लगे हैं..."

"आज मैं भी अपनी शङ्काओं का समाधान चाहूँगा...." उदयन बोला।

"कैसी शङ्का बेटा....?"

"आपने माँ को अकेली क्यों छोड़ दिया? क्या यह अन्याय नहीं हुआ? क्या आपका यह अमानुषिक व्यवहार मानवीय धर्म के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता?"

"क्या तुम्हारी माँ ने कभी इस परिस्थिति के विषय में स्पष्ट नहीं किया?"

"नहीं, कभी नहीं...."

"इसका उचित और न्यायसंगत उत्तर तुम्हारी माँ के पास ही है, मेरे पास कुछ भी नहीं। अपनी माँ से पूछो...."

"माँ ने कहा था—भाग्य जब जिसे जहाँ चाहता है, ले जाता है....तो क्या भाग्य की शक्ति मनुष्य के कर्त्तव्यों से अधिक बलवती होती है?"

"नहीं उदयन....पुरुष का पुरुषार्थ स्वयं अपरिचित शक्ति का अजेय शृंग है, जिस पर भाग्य कभी अधिकार नहीं कर सकता...."

"ऐसी शक्ति का संचय कैसे होता है, पिता जी...?"

"अदम्य उत्साह, संयम और स्वाध्याय से ऐसी शक्तियाँ मानवीय जीवन का प्राप्त होती हैं। नीति और शास्त्रों के सिद्धान्त ऐसा ही कहते हैं...."

"आपसे जीवन की कई नई वस्तुएँ मिलीं...."

"उदयन...."

"आज्ञा माँ...."

"तुम तो कहते थे, पिता जी से जिस दिन भेंट होगी, शास्त्रार्थ करूँगा...."

"शास्त्रार्थ ही तो कर रहा हूँ....माँ...." उदयन बोला।

"आज संध्या समय हम लोगों को प्रस्थान भी तो करना है...."

"क्या आप कुछ दिन और अपना समय नहीं निकाल सकते? मुझे यहाँ की पर्वत मालाओं ने अपने अङ्क में बाँध लिया है, वन-प्रान्तर की पगडण्डियाँ सदैव मेरी प्रतीक्षा करती हैं, पक्षियों को मेरी स्वर-लहरी बहुत प्रिय हो गई है। इन सारे आकर्षणों के अतिरिक्त यहाँ का मोहक वातावरण प्राणों में इतना रम गया है कि...." उदयन आगे कुछ कह न सका।

"ऐसा हो जाना अस्वाभाविक नहीं। यह मानवीय विशेषताओं में है। तुम्हें कौशाम्बी की मिट्टी पुकार रही है। साथ ही मेरे शरीर

को तुम देख ही रहे हो। पके फल का क्या विश्वास ? पता नहीं कब आकाश से धरती पर टपक पड़े...."

"महर्षि को इसकी सूचना दे दी गई है ?"

"अभी जाकर ऋषिराज को सूचित किये देता हूँ...."

"रुमण्वान साथ चलेगा...."

"अवश्य उसकी कोमल प्रकृति और दृढ़-विचारों ने मुझे बहुत प्रभावित कर लिया है। स्वभाव से ही मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है...."

सहसा बाहर से किसी का पदचाप सुनाई पड़ा। उदयन बोला—

"कौन....रुमण्वान....?"

"उदयन...." रुमण्वान का गीला स्वर उदयन के अचेतन अन्तर से टकरा गया।

"भीतर आ जाओ भाई...." रुमण्वान भीतर आ रहा।

"सम्राट कहाँ गये ?"

"महर्षि के पास...."

"हमारी यात्रा तो आज निश्चित है ?"

"पिता जी की यही कृपा है, कोई संशोधन की आशा नहीं की जा सकती...."

"तुम तो तैयार हो न ?"

"तुम्हारी भी यही सहमति है, उदयन...."

संध्या समय सम्राट शतानीक, रानी मृगावती, उदयन और रुमण्वान के साथ उदयाचल से कौशाम्बी के लिए विदा हुए।



तीन

सम्राट शतानीक ने शासन का सारा भार उदयन के कन्धे पर रख दिया और स्वयं अपनी भार्या मृगावती के साथ हिमालय की ओर चल पड़े। उदयन वत्सराज्य पर शासन करने लगा। क्रमशः राज्य का सारा भार अपने सुयोग्य मन्त्रियों पर सौंप कर वह अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

कुछ दिनों तक वह एकान्तवास करता रहा और अब उसकी प्रवृत्ति आखेट की ओर हुई। दिन का अधिकांश समय आखेट में और रात का वासुनेमि नाग की दी हुई सुघोषवती वीणा के साथ बीतने लगा। घोषवती वीणा की सहायता से मदमत्त हाथियों को पकड़ कर लाता और आखेट भी किया करता।

महामात्य यौगन्धरायण के सम्मुख कौशाम्बी का मानचित्र सदैव सपने की तरह झूलता रहता। समय की गतिशीलता पर उसे विस्मय के साथ ही आश्चर्य भी कम न होता। वे छोटे-छोटे राज्य जो कौशाम्बी की छत्र-छाया में फूल-फल रहे थे, संयोग पाकर अपने को स्वाधीन घोषित कर चुके थे। पाञ्चाल—देश भी उन्हीं में से एक था। यौगन्धरायण अपनी शक्ति को बार-बार तौल कर भी कोई नया चरण बढ़ाने में हिचक-सा जाता था। उसके मस्तिष्क में यह निदान बुरी तरह घर कर चुका था कि यदि मागध-नरेश से हमारा सहयोग और सम्पर्क स्थापित हो जाय तो पाञ्चाल पर विजय करना

सुगम हो जायगा। यौगन्धरायण विचारों के ऊहापोह में उलझा था कि प्रतिहारी ने आकर सम्मान पूर्वक अभिवादन किया।

"मन्त्री प्रवर...." प्रतिहारी ने कहा।

"कोई आवश्यक सूचना है ?"

"उज्जयिनी-नरेश महासेन का दूत आपके दर्शन के लिए...."

"कब आया...." महामन्त्री यौगन्धरायण ने जिज्ञासा की। यौगन्धरायण के समक्ष उज्जयिनी और कोशाम्बी के दुराव भरे क्षण अपनी विराट आकृति लिए नाच उठे।

"आज प्रातःकाल...."

"उसके उचित आवास-निवास का प्रबन्ध हो चुका है ?"

"मन्त्री-प्रवर...."

"सम्राट को इसकी सूचना दी जाय। सम्राट के सम्मुख ही उज्जयिनी के दूत को उपस्थित किया जाय...." यौगन्धरायण ने कहा।

"जो आज्ञा...." प्रतिहारी ने कहा और इसकी सूचना सम्राट को दी। सम्राट के सम्मुख उज्जयिनी का राजदूत प्रस्तुत किया गया। उज्जयिनी के राजदूत ने बड़े ही नाटकीय ढङ्ग से सम्राट के सम्मुख अपने को उपस्थित किया। बोला—

"उज्जयिनी-सम्राट महासेन की ओर से सम्राट उदयन और सभासदों का हार्दिक अभिवादन स्वीकार हो...."

"उज्जयिनी में कुशल तो है ?"

"सब आपकी कृपा का आश्रय है....राजन्! उज्जयिनी बार-बार आपका स्मरण करती है।"

"इस शुभ स्मरण के लिए हम सम्राट महासेन का आभार स्वीकार करते हैं।"

उज्जयिनी के राजदूत ने कौशाम्बी-नरेश के सम्मान में अपना मस्तक झुकाया और कहा—

"सारा आर्यावर्त्त आपके गुणों से परिचित है। राजकुमारी वासवदत्ता गन्धर्वविद्या में आपका शिष्यत्व ग्रहण करना चाहती हैं। यदि उज्जयिनी के प्रति सम्राट का रंचमात्र भी स्नेह हो तो स्वीकार करने की अनुकम्पा की जाय...."

सम्राट उदयन ने मन्त्री-प्रवर यौगन्धरायण की ओर देखा, फिर रुमण्वान की ओर। कुछ क्षण तक वह सोचता रहा। कई विचार सम्मुख आते रहे। कई शुभ और अशुभ आशंकाएँ आँखों से होकर मन में उतराती रहीं। उदयन के सम्मुख एक महाशून्य-सा नाचता हुआ दीख पड़ा। रुमण्वान ने कहा—

"सम्राट की आज्ञा अपेक्षित है...."

"अपने व्यक्तिगत जीवन और कौशाम्बी के सम्बन्ध में मेरा अपना कोई स्वतन्त्र विचार नहीं, मन्त्री-प्रवर यौगन्धरायण का उत्तर ही मान्य होगा। मन्त्री-।वर यदि चाहें तो वे इस सम्बन्ध में एकान्त-वार्त्ता कर सकते हैं।"

"सम्राट...." रुमण्वान बोला।

"तुम मेरे व्यक्तिगत जीवन से परिचित हो। मन्त्री-प्रवर से कुछ भी बात करने से पूर्व मैं तुमसे बातें करना अच्छा समझूँगा...." सम्राट उदयन ने कहा और वह रुमण्वान के साथ अपने शयनागार में जा रहे। सम्राट ने पुनः कहा—

"वासवदत्ता के विषय में तो तुम जानते हो...."

"क्या आप उज्जयिनी-नरेश महासेन के विषय में नहीं जानते?"

उदयन कुछ बोल न सका। उसकी मौन-पलकों की भाषा रुमण्वान के सम्मुख मुखरित हो उठी। रुमण्वान ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा—

"यदि आपके मस्तिष्क में कोई दुर्बलता हो तो उसे आप स्वच्छन्द होकर स्पष्ट कर देंगे। इस विचार को ध्यान में रखते हुए कि मन्त्री प्रवर यौगन्धरायण इन सब बातों की अधिक जानकारी रखते हैं। जीवन के कितने ही उत्थान-पतन उन्होंने देखे हैं। आपके पूज्य पिता सम्राट शतानीक के शासनकाल में भी अपनी कार्य-दक्षता और नीति-कुशलता का परिचय दिया है। वे जो कुछ कहेंगे, उनका जो भी निर्णय होगा वर्त्तमान और भविष्य को दृष्टि-कोण में रखते हुए होगा...."

"तुम अपनी सहमति प्रकट करो, रुमण्वान...."

"यह आपका व्यक्तिगत प्रश्न है परन्तु उज्जयिनी-नरेश का दर्प-भरा संवाद कैसे कौशाम्बी आया, आश्चर्य का विषय है...."

"इसमें दर्प की कोई बात नहीं। वासवदत्ता को मेरा शिष्यत्व ग्रहण करना है, इसलिए यह तो उचित ही था कि वह स्वयं मुझसे सम्पर्क स्थापित करतीं, परन्तु उज्जयिनी की राजकुमारी कौशाम्बी आकर शिक्षा ग्रहण करें, यह कुछ विचित्र-सा लगता है ..."

"यह बात अवश्य है कि आपकी कीर्त्तिलता सारे संसार में फैल गई है। यह सब उसी का प्रमाण है। उज्जयिनी-नरेश को अपनी कन्या के विषय में चिन्ता है। प्रत्येक पिता सोचता ही है कि उसकी पुत्री अच्छे कुल-शील में पड़े। आप इस विषय पर मन्त्री-प्रवर यौगंधरायण से अच्छी तरह जान सकेंगे। मुझे जीवन की इन समस्याओं की अधिक जानकारी भी नहीं परन्तु उस राजपूत की आकृति-रेखाओं को देखकर जैसी मेरी धारणा बनी मैंने आपके समक्ष रख दिया...."

"प्रतिहारी...."

"आज्ञा-सम्राट...."

"मन्त्री-प्रवर से कुछ आवश्यक...."

"अभी सूचित किये दे रहा हूँ, सम्राट...." और दूसरे क्षण यौगंधरायण उदयन के शयनकक्ष में आ उपस्थित हुआ।

"आज पुनः आपको कष्ट हुआ, मंत्री-प्रवर...." उदयन ने कृतज्ञता प्रकट की।

"सम्राट शतानीक के जीवन-काल में अधिक विश्राम-लाभ कर चुका हूँ। यदि सम्राट उदयन के शासन-काल में कुछ कष्ट ही सहना पड़ा तो क्या हुआ...."

"आपको मैंने कभी मन्त्री माना ही नहीं, सदैव पिता तुल्य समझा। उज्जयिनी-नरेश के संवाद के सम्बन्ध में कृपया आप अपने मौलिक विचार प्रकट करें, साथ ही मुझे उचित आदेश भी दें...."

"आपकी मानसिक-स्थिति से अवगत होते हुए भी यह कल्पना करने की धृष्टता नहीं कर सकता कि आप इस विषय पर इतने दुर्बल हो उठेंगे। जीवन की दुर्बलता सही जा सकती है पर मन की दुर्बलता पुरुषत्व के साथ-साथ पुरुषार्थ को भी नष्ट कर देती है।"

उदयन चुपचाप सुनता रहा। समस्यायें कुछ क्षणों तक अपने में उलझाये रहीं फिर भी उसके अन्तर की दुर्बलता सदैव उसे दूसरी विपरीत दिशा की ओर खींचे जा रही थी। ऐसी अज्ञात दिशा की ओर, जिधर रूप का सिन्धु, यौवन का ज्वार और जीवन का नया पथ होता है। उदयन के कानों में मन्त्री-प्रवर के शब्द बार-बार प्रतिध्वनि बनकर गूँजने लगे। उदयन ने कहा—

"आपका आदेश चाहता हूँ, मन्त्री-प्रवर! विचार नहीं। आपने जो मेरे मन पर दुर्बलता का अभियोग लगाया है, उससे मुक्ति पाने के लिए आपकी सहमति नहीं आपकी आज्ञा ही आवश्यक है...."

"उज्जयिनी-नरेश की गति-विधि से सारा कौशाम्बी परिचित है।

महासेन की कूटनीति को समझ चुका हूँ, वह आपको इसी बहाने अपने यहाँ बुलाकर अपनी पुत्री वासवदत्ता को आपके जीवन के साथ बाँधना चाहते हैं। उन्हें यह ज्ञात है, यौगन्धरायण मेरी नीति से परिचित है। इन सब बातों के अतिरिक्त कुछ राजनैतिक समस्यायें भी हैं। यदि उन्हें यह सम्बन्ध स्थापित ही करना आवश्यक था तो उचित-ढङ्ग से यह कार्य संपादन होना चाहिये था। यदि वह इस स्थिति को सँभाल न सकेंगे तो आपको बन्दी भी बना लेंगे। इन अवस्थाओं में मनुष्य कब किस स्थिति में होगा, कहा नहीं जा सकता....अन्तिम निष्कर्ष....मुझे तो यह सारा षड़यन्त्र ही लगता है....मैं तो यही चाहूँगा कि आप उज्जयिनी-नरेश का यह आमन्त्रण स्वीकार न करें....” यौगन्धरायण ने कहा।

“राजदूत को तो कुछ उत्तर देना ही होगा....ऐसा उत्तर, जिससे परस्पर किसी प्रकार का विरोध-भाव भी न प्रकट हो....”

“कौशाम्बी की सैनिक-शक्ति उज्जयिनी से किसी भी अंश में न्यून नहीं। जो होगा, देख लिया जायगा....फिर भी युद्ध से अलग रहने में ही मनुष्यता की रक्षा हो सकती है....” रुमण्वान ने कहा।

“युद्ध से तभी तक भागा जा सकता है, जब तक सम्मुख नहीं आ जाता। जब युद्ध अपना आकार ले बैठे, तो जीवन और प्राणों को मुट्ठी में बाँधकर आगे बढ़ना चाहिये, क्षत्रिय-धर्म यही कहता है....” यौगन्धरायण ने अपना विचार सम्राट उदयन और रुमण्वान के सम्मुख प्रकट किया।

“मन्त्री-प्रवर को यह अधिकार है, जो उचित उत्तर देना चाहें मौखिक रूप में उज्जयिनी के राजदूत को दे दें....” उदयन ने अपने सहपाठी रुमण्वान की ओर भावभरी आँखों से देखा।

रुमण्वान से उदयन की मनोभावना छिपी न रह सकी। रुमण्वान ने कहा—“ऐसी आकुलता सम्राट....”

"प्रतिहारी...."

"आज्ञा मन्त्री-प्रवर...."

"उज्जयिनी के राजदूत को सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया जाय...." दूसरे ही क्षण राजदूत ने सम्राट और मन्त्री-प्रवर का सादर अभिवादन किया। बोला—

"सम्राट के आदेश की प्रतीक्षा है...."

"यदि उज्जयिनी-नरेश को कोई आपत्ति न हो तो राजपुत्री वासवदत्ता कौशाम्बी पधार कर ही सम्राट-उदयन का शिष्यत्व ग्रहण करें...." यौगन्धरायण ने कहा।

"यह कैसे सम्भव हो सकता है, भला ? राजकुमारी वासवदत्ता पर समस्त उज्जयिनी को अभिमान है और यह कुछ विचित्र-सा लगता है....मेरी प्रार्थना है....सम्राट अपने विचारों में थोड़ा परिवर्त्तन करें...."

उदयन की आकुल आँखों में वासवदत्ता का मादक-चित्र नाच उठा। एक ही क्षण में अगणित सपने आकर बोल उठे, जिनकी प्रतिध्वनि उसके मन-प्राणों में हुई। उदयन ने एक बार रुमण्वान की ओर देखा और वही दृष्टि मन्त्री-प्रवर यौगन्धरायण पर लौटकर स्थिर हो गयी।

"इसमें कोई परिवर्त्तन सम्भव नहीं...." यौगन्धरायण के स्वर में निश्चय बोल रहा था।

"जो आज्ञा...." कहता हुआ राजदूत बाहर हो गया।

"यदि मन्त्री-प्रवर की आज्ञा हो तो मैं महासेन को बन्दी बनाकर कौशाम्बी ले आऊँ.." उदयन ने कहा।

"ऐसा करना न सम्भव है, न उचित। आपको यह स्वीकार करना ही होगा कि महासेन एक प्रभावशाली सम्राट हैं। उज्जयिनी नगरी संसार का आभूषण है। उज्जयिनी के कण-कण से सुधा

छलकती है। वह अपने रूप और सौन्दर्य से अमरावती को भी लजाती है। उज्जयिनी में, महाकाल का स्वरूप ग्रहण कर विश्वनाथ वास करते हैं। उज्जयिनी के पूर्व नरेश महेन्द्र वर्मा थे। आप ही के समान उन्हें जयसेन नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। जयसेन को अप्रतिम प्रतिमा के साथ अपूर्व शक्ति वरदान में मिली। उज्जयिनी के सम्बन्ध में एक बड़ी ही रहस्मयी कथा प्रचलित है सम्भवतः आप उससे अनभिज्ञ हों। जयसेन का राज्याभिषेक हुआ। उन्हें चिन्ता हुई कि न उनके पास सामयिक कृपाण है न स्त्री। शनै-शनै. उनकी यह चिन्ता बलवती होने लगी और वह चण्डिका-स्थान में जाकर निराहार आराधना करने लगे। आराधना के क्रम में अपने शरीर का माँस काट-काटकर होम करने लगे। चण्डिका ने उनकी आराधना से प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा—'वत्स, मैं तुम्हारी आराधना से प्रसन्न हूँ—यह अजेय कृपाण स्वीकार करो। तुम्हें अंगारवती भार्या भी शीघ्र ही प्राप्त होगी। तुमने मेरी उपासना में बहुत बड़ी साधना की है, अतः आज से तुम्हारा नाम चण्डमहासेन रहा।' देवराज इन्द्र के पास दो अपूर्व सम्पत्ति थी—बज्र और एरावत। चण्डमहासेन के पास भी दो रत्न थे—एक चण्डिका का दिया हुआ वरदानी कृपाण और नडागिरि नामक मदमत्त हाथी। कृपाण और नडागिरि के प्रभाव से वे बहुत ही सुखी थे...."

"आपने तो उज्जयिनी-नरेश के विषय में कुछ ऐसी बातें सुनाईं.... कि...." रुमण्वान ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ, तो फिर आगे...." उदयन ने उत्सुकता दिखायी।

"एक दिन वे आखेट के लिए सघन-वन में जा रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि भयंकर वराह पर पड़ी। उसे देखकर उन्हें ऐसा लगा जैसे रात का अन्धकार दिन को पिण्डीभूत हो उठा हो। महासेन

ने बार-बार अपने बाणों का लक्ष्य बनाया पर वे उस पर आघात न कर सके। वराह रोष में उठा और उनके रथ को तोड़-फोड़कर अपने माँद में घुस गया। महासेन ने साहस से काम लिया। वे भी उसका पीछा करते हुए माँद में जा घुसे। माँद प्रशस्त और लम्बा था। कुछ दूर जाने पर एक सुन्दर नगर दीख पड़ा। नगर के मध्य में एक तालाब था। तालाब के एक किनारे पर बैठकर वे चिन्ता में डूब गये। सहसा किसी का पदचाप सुन पड़ा। पीछे मुड़कर देखने का संयोग न मिला कि अचानक—'तुम कौन हो युवक....' कोमल स्वर उनके प्राणों से टकरा गया। 'आप कैसे इस बिल में आ रहे?' और वह सम्मुख आ रही। अप्रतिम सौन्दर्य, रूप-राशि से लदा लथपथ शरीर, अंग-अंग से तरुणायी झाँकती हुई। आँखों से अमृत बरसाती हुई, अधरों से आसव। महासेन ने भर आँख उसकी ओर देखा तो देखते रह गए। प्रश्नों का उत्तर देना तो उन्हें स्मरण ही न रहा। युवती समीप आ गई। महासेन ने एक बार पुनः उसे नख से शिख तक निहारा। युवती की आँखें भर आयी थीं। महासेन ने पूछा—'आँखों में अमृत की जगह आँसू कैसे आ गये....' तरुणी ने उत्तर में कहा—'अभी जो वराह इस माँद में घुसा है वह अंगारक नामक दैत्य है, मैं उसकी पुत्री हूँ। मेरे पिता का सम्पूर्ण शरीर पत्थर का बना है। वह राजकुमारियों को पकड़ लाता है और उन्हें मेरी दासी बनने के लिए विवश करता है। इसी अभिशाप से वह राक्षस भी हो गया है। आपको देखकर छोड़ दिया, इसलिए कि वह थका-प्यासा आया था। अभी वह अपना रूप बदल कर सो रहा है। जब उसकी आँखें खुलेंगी तो कोई न कोई अनिष्ट अवश्य करेगा। यहाँ अन्य कोई आखेट दृष्टि में नहीं आता। मैं आप ही को देखकर चिन्तित हो रही हूँ कि आपका यह सुन्दर शरीर एक ही

क्षण में काल के मुख में होगा। इसीलिए मेरी आँखें में आँसू आ गए। महासेन ने कहा—'यदि मेरे लिये तुम्हारे भीतर थोड़ी भी सहानुभूति हो तो एक काम करो। जब वह जगे तो उसके पास जाकर रोने लगो। वह तो तुम्हारे रोने का कारण अवश्य पूछेगा, तो कहना—'मैं इसलिए रो रही हूँ कि कहीं किसी ने आपको मार दिया तब मेरी क्या गति होगी। इसमें हम दोनों का कल्याण सम्भव है।'

उदयन और रुमण्वान विस्मय-विमुग्ध यौगन्धरायण की ओर देख रहे थे और वह कहे जा रहा था—

"अङ्गारवती ने महासेन का परामर्श स्वीकार किया। अनिष्ट की आशङ्का से रक्षा करने के लिए महासेन को कहीं छुपा दिया और स्वयं अपने पिता के समीप पहुँची। जब राक्षस की नींद टूटी तो अङ्गारवती की आँखों में आँसू देखकर उसने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों देख रहा हूँ, बेटी...." "यदि किसी वीर पुरुष ने आपकी हत्या कर दी तो मेरी क्या गति होगी।" सुनते ही राक्षस अट्टहास कर उठा। बोला—"मुझे कौन मार सकता है बेटी, मेरा सारा शरीर बज्र से भी बज्र है। केवल बाँयें हाथ में एक छिद्र है उसे भी तो मैं सदैव बन्द ही रखता हूँ।" अङ्गारक अपनी पुत्री अङ्गारवती को सान्त्वना दे रहा था। महासेन उसकी सारी बातें सुन रहे थे।"

"फिर क्या हुआ?" उदयन ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"सन्ध्या हुई। राक्षस उठा और स्नानादि करके पूजा करने आसन पर बैठ गया। तभी महासेन ने उसे युद्ध के लिए ललकारा। राक्षस ने बायाँ हाथ उठाकर संकेत किया कि अभी थोड़ी देर बाद युद्ध में आऊँगा। अभी पूजा कर रहा हूँ। महासेन को संयोग मिला। उन्होंने अपने बाण का लक्ष्य बनाया। बाण उसी मर्मस्थल

पर जाकर धुसा जहाँ वह छिद्र था। राक्षस चीत्कार के साथ धराशयी हो गया। अंगारकासुर की हत्या कर वे अंगारवती को साथ लिए उज्जयिनी पहुँचे। विधिपूर्वक दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। कालक्रम के अनुसार दो पुत्ररत्न गोपालक और पालक प्राप्त हुए और एक कन्या वासवदत्ता हुई। उज्जयिनी दुर्गम-प्रदेश में अवस्थित है। महासेन बहुत अभिमानी पुरुष है किन्तु वासवदत्ता...."

वासवदत्ता का नाम सुनते ही, उदयन को लगा जैसे वह चुपके से आई और उनका हृदय-कोश चुराकर ले गई।

चार

सम्राट उदयन के जीवन का प्रमुख अङ्ग बन गया था आखेट। मृगा के बिना कभी उसका चित्त स्थिर नहीं रह पाता। हाथियों के आखेट के चलते कई बार अपने जीवन से हाथ धोने की आशंका भी हुई परन्तु वह इससे अपने को विमुक्त न कर सका। जंगलों में सदैव उसके चाकर घूमा करते और समय-समय पर हाथियों की सूचना देते। एक बार एक चाकर ने आकर सूचना दी—कि विन्ध्याचल के वन में मैंने एक ऐसा हाथी देखा है, जैसा आज तक कभी नहीं देखा गया। उसका शरीर इतना विशाल है जैसे स्वयं विन्ध्याचल पर्वत ने ही हाथी का आकार ग्रहण कर लिया हो।

उदयन हर्ष से फूल उठा। चाकरों को जीभर कर पुरस्कार दिया। उसके सामने नडागिरि का चित्र उतर गया। वह मन ही मन सोचने लगा—"यदि उज्जयिनी-नरेश के नडागिरि हाथी की

तरह मुझे भी एक हाथी मिल जाय तो मैं अवश्य ही उसे पकड़ कर कौशाम्बी ले आऊँ।"

उदयन की तृष्णा बढ़ने लगी। आकर्षण की रेखायें और स्पष्ट होने लगीं। एक अज्ञानशक्ति बड़ी आकुलता के साथ समेटने लगी। विन्ध्याचल के निर्जन वन में ज्यों ही उसने उस विशाल हाथी को देखा, वह उस पर मोहित हो गया। किसी भी मूल्य पर उसे कौशाम्बी ले जाना चाहता था। एक हाथी के लिए बड़ा से बड़ा बलिदान, बड़ी से बड़ी अनिष्टकारी आशङ्काओं से जूझने को प्रस्तुत था और हाथी निर्भय-निश्छल-सा अपनी जगह पर खड़ा था। उदयन को इससे अच्छा संयोग मिलना भी कठिन दीख रहा था। उदयन ने अपनी सुघोषवती वीणा हाथों में लिया और अपने अन्य सैनिकों तथा चाकरों को अपने से अलग कर दिया, बहुत-दूर। वीणा बज उठी। उदयन स्वयं वीणा की मादक स्वर-लहरी के साथ तन्मय हो गया। वन प्रान्तर का कोना-कोना मुखरित हो उठा। दिशायें गुञ्जित हो उठीं। वृक्षों की टहनियों के साथ ही कोमल-कोमल पत्तियाँ रस में नहा उठीं। पक्षियों की पंक्ति मन्त्र-मुग्ध हो उठी।

सन्ध्या के चरण आगे बढ़ने लगे और शनै-शनै उदयन के भी। अमावस की रात ने सारे संसार को अपने अंक में समेट लिया। हाथी की छाया सामने थी। उदयन की आँखें उसकी ओर लगी थीं।

उदयन ने हाथी का पीछा किया और वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। तृप्ति दूर भागने लगी। तृष्णा पीछा करने लगी। देखते-देखते हाथी बहुत दूर चला गया और सैनिक पीछे रह गए। उदयन अब अकेला था। हाथी ने अपना कोई विरोधी रूप उपस्थित नहीं किया।

हाथी खड़ा हो गया। उदयन के आश्चर्य की सीमा न रही। सफलता समीप आती दीख पड़ी। सहसा हाथी का पेट खुला जैसे किसी बड़े प्रासाद का द्वारा खुलता है और असंख्य सैनिक बाहर आ रहे। यह देखकर उदयन क्रोध के मारे आग हो गया। उसने तलवार निकाली और सम्मुख आए सैनिकों का शीश धरती पर गिरा दिया। यह सब कुछ होने के अनन्तर भी किसी सैनिक ने उदयन पर अपनी ओर से आक्रमण नहीं किया। उदयन की शंका आशंका का रूप धारण करने लगी। कुछेक क्षण बाद कुछ और सैनिक भी आ पहुँचे। सबों ने मिल कर वत्सराज उदयन को बन्दी बना लिया और उज्जयिनी की ओर ले चले।

उदयन को देखने के लिए उज्जयिनी का जन-समूह आषाढ़ के बादलों की तरह उमड़ पड़ा। उदयन के रूप और गुणों की चर्चा सुन कर जन-समूह को इस प्रश्न पर बहुत ही पश्चाताप होने लगा कि कहीं अवन्तिराज कौशाम्बी नरेश की हत्या न कर डालें। चारों ओर यही चर्चा होने लगी। उज्जयिनी के नगर-निवासियों ने यह निश्चय कि यदि इस तरह अनिष्टकारी विचार अवन्तिराज महासेन के मन में आयेगा तो हम सभी राज्य प्रसाद के सम्मुख सत्याग्रह करेंगे। पश्चात् अवन्तिराज ने स्थिति का स्पष्टीकरण किया।

उदयन महामंत्री के प्रकोष्ठ में उपस्थित किया गया।

"राजन्, हम समस्त उज्जयिनी की ओर से आपका अभिनन्दन करते हैं...."

"आप कौन हैं?"

"उज्जयिनी का सेवक मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ कि हमारे व्यवहार से आपको बहुत कष्ट हुआ होगा। किसी से वैर-विरोध करना अभिष्ट नहीं और अकारण कारण भी उचित नहीं। अब आप

चलें। आपका राजभवन की ओर ले चलूँ...." कहते हुए राजमंत्री ने उदयन को रथ पर बिठाया।

"............"

"यह रहा आपके लिए....यहाँ आप किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव करेंगे। मात्र 'स्वाधीनता के कुछ क्षणों पर आपका अपना अधिकार न होगा।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि मेरे जीवन का यह क्रम कब तक चलेगा ?" उदयन ने कहा।

"यह प्रश्न आपका है और इसका यथोचित उत्तर भी आप ही के पास है। अपने आप से पूछिये...."

"यदि मेरे पास कोई उत्तर न हो तो...."

"इसका उत्तर स्वयं उज्जयिनी-नरेश ही दे सकेंगे...."

× × × ×

"आपको कष्ट उठाना पड़ा...."

"कष्ट का प्रश्न दूर का है परन्तु प्रपंचों के द्वारा मुझे बन्दी बनाकर स्वयं उज्जयिनी-नरेश ने शताब्दियों की प्रतिष्ठा को अपने ही हाथों लुटा नहीं दिया है...."

"इसका उत्तर मेरा विषय नहीं, राजन्। क्षमा करें....आप चाहें तो सम्राट से मिलने का प्रबंध कर दूँ...."

"नहीं, मेरे लिए ऐसा न किया जाय....मुझे सम्राट से मिलने की कोई आवश्यकता नहीं...."उदयन ने कहा।

"सम्राट की एक अभिलाषा आपके सम्मुख रखी जाय...."

"पहले मेरी आशा...."

"आपकी आशा भी उसी अभिलाषा में मिल जायेगी, मुझे ऐसा लगता है...."

"मंत्री जी...."

"आप गंधर्व-शास्त्र के विशेषज्ञ हैं। आप वासवदत्त को संगीत की शिक्षा दें...."

"उज्जयिनी का दूत यह समाचार लेकर कौशांबी गया था और उसे संतोषजनक उत्तर के साथ बिदा किया गया। फिर ऐसी कौन-सी समस्या उपस्थित हुई कि यह जघन्य कर्म करना पड़ा। यदि मैं इन प्रपंचों से अवगत होता तो सारी उज्जयिनी को क्षार कर देता...."

"राजन् आप वासवदत्ता का आचार्यत्व ग्रहण करें, इसी में आपका कल्याण है।"

"स्वीकार किया परन्तु एक बात—राजकुमारी मुझे नित्य प्रति प्रणाम करेंगी...."

"उज्जयिनी की राजकुमारी एक साधारण बन्दी को किसी भी मूल्य पर प्रणाम नहीं कर सकती ...."

"ऐसी शिष्या को एक बन्दी स्वीकार नहीं कर सकता...." उदयन ने उत्तर में कहा।

अन्त में यह निश्चित हुआ कि सम्राट उदयन वासवदत्ता की एक कुब्जासहेली को शिक्षा देंगे। बीच में आवरण रहेगा और वह राजकुमारी को बतला दिया करेगी। संगीत शिक्षा का यह क्रम चलने लगा।

राग-रागिनियों के विषय में बहुत बार समझने पर भी एक दिन राजकुमारी ने पूछा—

"राग और रागिनियों के कितने उपभेद होते हैं?"

राजकुमारी के इस अनर्गल प्रश्न पर उदयन आकुल हो उठा। बोला—

"कुबड़ी को कोई कहाँ तक समझाए? यह तो पत्थर है... पत्थर....मूर्खा..."

"कौन कुबड़ी है ? सभ्यों की तरह वार्ता कीजिये...." राजकुमारी वासवदत्ता बोली।

देखते-देखते दोनों क्रोधावेश में आ रहे। राजपुत्री ने अकुला कर बीच का आवरण हटा डाला। उदयन की दृष्टि वासवदत्ता की निवारण-आकृति पर गई। आँखों-आँखों से छक कर पीया। उदयन ने कहा—

"क्या मेरे समक्ष उज्जयिनी की राजकुमारी वासवदत्ता हैं ?"

"और मेरे सम्मुख वत्सराज उदयन..."

उदयन के अंतर की धधकती अग्नि-शिखा शान्त हो गई और प्रेम की बाती जलने लगी। वासवदत्ता के लोचन और प्राण दोनों उदयन से जा लगे। आँखें तो लज्जा से झुकीं पर हृदय नहीं।

उदयन को बन्दी बनाने के लिये अवन्तिराज महासेन को असंख्य सैनिक भेजने पड़े। राजकुमारी वासवदत्ता ने बड़ी ही सुगमता और शांति के साथ बन्दी बना लिया।

उदयन के हृदय पर घोषवती वीणा, कंठ में गीत-ध्वनि और आँखों में वासवदत्ता, ये तीनों उपकरण उदयन के जीवन में सहायक हुए। वासवदत्ता सदैव उदयन की परिचर्या में लगी रहती।

आकर्षण की लहरें दोनों को परस्पर समीप खींचने लगीं। उदयन अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर पाता। वासवदत्ता भी अपने अंतर की भावनाओं को कह नहीं पाती फिर भी दो आकुल प्राणों की अव्यक्त भाषा आँखों के पथ से ही एक दूसरे को छू जाती। संगीत का अध्ययन और अध्यापन निरन्तर चलता रहा।

× × × ×

"आज आप बहुत उदास दीखते हैं राजन्..." वासवदत्ता ने कहा।

"आपको नहीं देखने से..." उदयन बोला।

"आपका यह आचरण अच्छा नहीं कहा जा सकता..."

"क्यों?"

"मेरा मौन ही इसका उचित उत्तर हो सकता है..."

"मौन का पर्यायवाची स्वीकार होता है न, राजकुमारी जी..."

"अपने मंत्री जी से मेरे नित्य प्रति के प्रणाम करने की बात कही थी...."

"हाँ, कहा तो था मगर वह आज कितना पीछे हो गया। आज मैं स्वयं आपको एक बार नहीं सौ-सौ बार प्रणाम करने को तत्पर हूँ...."

"उज्जयिनी का राजदूत कौशाम्बी गया था, जिसके माध्यम से आपके प्रति निवेदन किया गया था मुझे गंधर्व-शास्त्र की शिक्षा देने के लिए और अपने उत्तर में कहा क्या?"

"मैंने कहा था यदि राजकुमारी कौशाम्बी आकर शिष्यत्व ग्रहण करें तो संभव हो सकता है किन्तु आपने कभी यह सोचा था यदि आप स्वयं इस स्थिति में होते तो आपके पास इसका क्या निदान था?"

"गंधर्व-विद्या की शिक्षा या शिक्षण तो एक ऐसा पाँसा था जिसके कंठ पर एक ओर मुझे और एक ओर...."

"मुझे रखा जा रहा था, यही न कहना चाहते थे आप..."

"कुछ ऐसा ही...और इस सत्य का प्रमाण भी प्रबल हो उठा। प्रमाण का अर्थ कुछ अन्यथा न समझेंगी। एकाएक आवरण के हट जाने के बाद भी सम्राट ने अध्ययन और अध्यापन-कर्म में कोई परिवर्त्तन उपस्थित नहीं किया।"

"आवरण तो आपकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निराकरण-मात्र था..."

"दो युवा हृदय परस्पर इतनी स्वाधीनता के साथ मिलते-जुलते रहें और किसी प्रकार की शंका न उपस्थित हो....क्या यह...."

"आशंका-या शंका का प्रश्न को आचरणों पर निर्भर करता है। प्रत्येक पुरुषार्थी पिता को अपनी संतान के आचरण पर विश्वास रहता है। संस्कार की जीवन्त आभा से ही चरित्र का निर्माण होता है...."

"मेरे जैसे अनजान व्यक्ति पर भी सम्राट का विश्वास है?"

"यही उनके चरित्र की उदारता है। आपके संस्कार पर उनका विश्वास है... किन्तु आपके इन प्रश्नों का लक्ष्य क्या है? क्या मैं जानने की आशा प्रकट कर सकती हूँ...."

"अभिलाषायें तो बहुत हैं परन्तु बिना आपके मनोभावों को जाने, उन्हें प्रकट नहीं किया जा सकता...."

"मेरे विचार से तो अब कुछ भी शेष नहीं रह गया है। नारी अबला कही गई है, वह अपना मंतव्य कैसे प्रकट कर सकती है.... यों आपके गौरव, पौरुष विद्वता गंधर्व-शास्त्र आदि से परिचित हो चुकी हूँ। कुछ ऐसी अवस्था आ गई है कि अपनी ओर से मैं कुछ भी कह नहीं सकती। मर्यादा की सीमा होती है, जिसका उल्लंघन मुझसे किसी भी दशा में संभव नहीं...."

"आपको समीप से देख कर मेरी भावनाओं में परिवर्त्तन ही नहीं हुआ वरन् वे अधिक प्रबल हो उठी हैं। उज्जयिनी-नरेश ने मेरे साथ अभद्रता का और प्रपंचों के माध्यम से मुझे पराजित कर बन्दी बनाया। अब तो उनके मुक्त कर देने के बाद भी स्वयं मुक्त हो सकूँगा या नहीं, सन्देह है। तन का बंधन तो शिथिल किया जा सकता है, मन का बंधन शिथिल नहीं किया जा सकता।

"युद्धों में ऐसा ही हो जाता है...."

"वह युद्ध नहीं था...."

"क्या आप विमुक्त होना चाहते हैं ?"

"अवश्य, पर किसी की कृपा के बल पर नहीं...."

"यदि मेरा योग-दान मिले तो...."

"वह मुझे सहर्ष स्वीकर होगा। आप तो देख रही हैं, मेरी स्थिति कितनी संशयपूर्ण हो गई है।"

"आपका व्यवहार कहता है कि अभी तक आपके भीतर से राजकीय दर्प का अन्त न हो सका। ज्ञात नहीं आपका यह बन्दी-जीवन और कब तक चले...."

"जितने दिनों तक चले अच्छा है यों अब तो यह आजीवन चलना है। मेरा पौरुष ही मुझे मुक्ति दे सकेगा, मुझे ही नहीं आपको भी...."

"यदि मैं ऐसा न चाहूँ...."

"आपसे बार-बार प्रार्थनाएँ करूँगा और जब मेरे बंधन से विमुक्त होने का संयोग मिलेगा, आपको भी ले जाने का प्रयत्न करूँगा...." वासवदत्ता की आँखों में सपने बोल उठे किन्तु वह अज्ञान आशंकाओं के भय से सिहर उठी। वासवदत्ता ने कहा—

"वत्सराज !"

"इन सभी बातों का रहस्य कहीं खुले नहीं अन्यथा मेरा जीवन संकट में पड़ जायेगा। आपके पिता के विचार मेरे प्रतिकूल न होते हुये भी संशय तो रहता ही है...."

"विश्वास रखें...."वासवदत्ता बोली।

"आपका आना-जाना और अध्ययन नियमित रूप से चलता रहे..."

वासवदत्ता ने उदयन की ओर देखा। उदयन की आँखों में

तृष्णा और अधरों पर मौन भाषा थिरक रही थी। दोनों का जीवन दो समानान्तर रेखाओं की तरह चल रहा था।

× × × ×

उज्जयिनी में यह समानान्तर सहसा फैल गया कि एक बड़े ही सिद्ध तपस्वी का आगमन हुआ है। दूर-दूर के लोग संन्यासी के पास पहुँचने लगे। अपनी-अपनी समस्याएँ उपस्थित करते और संन्यासी से समाधान की याचना करते। देखते-देखते संन्यासी की अच्छी ख्याति हो गई।

राजकुमारी वासवदत्ता ने संन्यासी से मिलने की इच्छा प्रकट की और राजमंत्री से इसके लिए अनुमति की प्रार्थना की। अनुमति पाकर संन्यासी गंधर्व-शाला में बुलाये गये। आदर के साथ उन्हें यथोचित आसन पर बिठाया गया। राजकुमारी वासवदत्ता ने संन्यासी को प्रणाम करते हुए कहा—

"आपके गुणों की अत्यधिक प्रशंसा सुनकर मैंने आपके दर्शन की अभिलाषा प्रकट की और आज कृतार्थ हुई...."

"ऐसा तो कुछ नहीं मेरे पास। जो कुछ है, वह गुरु का आशीर्वाद-स्वरूप...."

"सुना कि आप हस्तरेखा भी देखते हैं..."

"हस्तरेखा कोई नहीं देखता। ललाट की रेखायें देखकर ही कुछ कहा जा सकता है। रेखायें लिखना विधि का कर्त्तव्य है। मनुष्य उसे पढ़ नहीं सकता। शास्त्रों के आधार पर एक कल्पना भर की जाती है। थोड़ी बहुत कल्पनायें मैं कर लिया करता हूँ...."

"आप मेरी रेखायें देख कर यदि कुछ कह सकें तो बड़ी कृपा हो।"

सन्यासी ने राजकुमारी वासवदत्ता की ओर देखा। बोला—

"आप संभवतः उज्जयिनी की राजपुत्री हैं..."

"संन्यासी जी...."

"आपके जीवन में शीघ्र ही एक नया परिवर्त्तन होने वाला है, हृदय परिवर्त्तन तो हो चुका है। यदि मेरी बातें आपको सत्य लगें, स्वीकारात्मक उत्तर दीजिये...."

"संभव है...यह तो आपने मेरी आयु देख कर कहा होगा।"

"कपोलों की रेखाओं में आयु की वयः सन्धि सम्मिलित है...." सहसा संन्यासी की दृष्टि शयनागार से बाहर आते हुए सम्राट उदयन पर पड़ी। उदयन ने अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा—

"संन्यासी जी आप ज्योतिषी भी हैं...."

"ज्योतिष नहीं जानता, थोड़ा गुरु का प्रसाद मिला है, उसे ज्योतिष कहिये या सन्यास, सब समान है।"

"तनिक मेरा हाथ तो देखिये..."

"देख लिया आपका हाथ, रेखाएँ साक्षी हैं, जब तक आपकी मानसिक प्रक्रियाओं में परिवर्त्तन नहीं हो जाता, आपका अभिष्ट कभी सिद्ध नहीं हो सकता। अब अधिक विलम्ब नहीं। ईश्वर आपकी सहायता करेगा..."

"मानसिक प्रक्रियाओं का क्या अर्थ सन्यासी महाराज?"

"मेरा तात्पर्य आपकी चिन्ताओं से है। मानस से चिन्तायें दूर कीजिये। सफलता आपके चरणों पर होगी। आपको सदैव अपने पुरुषार्थ पर विश्वास रहता है, जो दिव्य-पुरुषों के लक्षण हैं।"

सन्यासी की भविष्य-वाणी ने सचमुच वासवदत्ता के जीवन में परिवर्त्तन की रेखाएँ उभार दीं। उसके लोचनों में सपने विस्तार ले रहे थे। कौशाम्बी का राज-प्रासाद उसके सम्मुख नाच रहा था। वासवदत्ता ने कहा—

"अन्तःगृह में कुछ आवश्यक कार्य हैं, आज्ञा हो सम्राट...."

"ऐसी शीघ्रता क्या है...."

"यह शीघ्रता नहीं....बाल्य-चञ्चलता है...." सन्यासी ने कहा और अपनी दृष्टि वासवदत्ता पर गड़ो दी।

"सन्यासी महाराज..." वासवदत्ता बोली।

"आप जा सकती हैं परन्तु पुनः थोड़ी देर में आपकी उपस्थिति चाहूँगा। आशा है, आपके कोमल-चरणों को कष्ट नहीं होगा...."

"इसमें कष्ट की क्या बात है....जीवन जीने के लिए और चरण चलने के लिए ही बने हैं....सम्राट...." वासवदत्ता ने कहा। उसके अरुण-अधरों पर उन्मुक्त हास की कड़ियाँ बिखर गईं।

सन्यासी ने वासवदत्ता के चलते हुए चरणों की ओर देखा। पीताम्बर के परिधान में लिपटा शरीर कञ्चन की काया को लजा रहा था। उसके नितम्बों तक रङ्ग-बिरङ्गे कुसुमों से सजी वेणी भूल रही थी, जैसे कोई विष से माती हुई सर्पिणी अँगड़ाई ले रही हो। उसके अंग-अंग से यौवन की आभा प्रस्फुटित हो रही थी।

सन्यासी उसकी ओर बड़ी सावधानी के साथ निहार रहा था। उदयन ने सन्यासी का ध्यान भङ्ग करते हुए कहा—

"सन्यासी...."

"कौशाम्बी में सब कुशल है। मैं हूँ यौगन्धरायण। आपको महासेन ने बन्दी बना ही लिया....इसकी आशंका मुझे उसी दिन हुई थी, जब राजदूत लौटकर आया था...."

"आपको देखकर मेरी आशंका बढ़ी थी परन्तु वह दब गई, वार्तालाप सुनकर ही। आपने तो विचित्र आकृति बना रखी है...."

"मैं अपनी ऐसी आकृति बना सकता हूँ कि आपके अतिरिक्त मुझे कोई देख ही न सके...."

"यह सब कहाँ सीखा आपने?"

"उज्जयिनी के वैतालिक महाकाल के आश्रम में रहकर यह सब क्रियाएँ सीखी हैं। योगेश्वर नामक वैतालिक ने इसकी शिक्षा-दीक्षा

दी है....'' कहते हुए सन्यासी ने अपने को लुप्त कर दिया। स्वर आता रहा। सन्यासी कह रहा था—

''आपके जाने की सारी व्यवस्था कर चुका हूँ। किसी संशय या विस्मय की बात नहीं। इतनी सुगमता के साथ आपको ले जाऊँगा कि देखियेगा....''

''सम्मुख आइये सन्यासी जी....''

''मैं आपके सम्मुख ही हूँ....''

''लगता है, पवन से बातें कर रहा हूँ....''

''यह क्या खड़ा हूँ ...''

''आपने यह क्या कर दिया सन्यासी जी। कहीं मेरी ही आँखों पर आवरण तो नहीं डाल दिया। मैं कुछ भी नहीं देख रहा...कुछ भी नहीं....''

''धीरे बोलिए अन्यथा बनी-बनायी योजना मिट्टी हो जायेगी...''

''महामन्त्री....''

''आपकी दुर्बलता मैं समझ रहा हूँ। मुझे जो आशंका पहले से थी, वह सम्मुख आकर ही रही। आपको बन्दी बनाने का जो उद्देश्य था, वह तो पूरा हो चुका है...''

''राजपुत्री को मैंने बहुत समीप से देखा है, कई बार उन्हें आग पर तपाकर भी देख लिया है। रूप और स्वभाव की तो कोई बात ही नहीं। अभ्यन्तर अनेक गुणों से विभूषित है, संगीत शास्त्र के अतिरिक्त कई शास्त्रों की सम्यक ज्ञाता भी हैं...''

''संगीत की शिक्षा तो आप ही ने दी है....''

''आरम्भिक ज्ञान तो पूर्व ही से था। राग-रागिनी, सम-विषय और आरोह-अवरोह का ज्ञान मेरे आने पर हुआ है। अब तो वे कठिन से कठिन रागिनी भी कोमल सुरों से गा लेती हैं....''

''आपकी आँखों का आकाश यह बता रहा है कि राजकुमारी

आप पर छा गई हैं। अलस-पलकों पर वही रङ्ग और निखर कर छा रहा है। मुझे क्या किसी भी सभासद् को आपसे ऐसी कल्पना की आशा भी न थी...''

"यौवन स्वयं एक आकर्षण है। यह वह धारा है कि कब किस ओर बह जाय कोई नहीं जानता....''

"अपने आप पर तो आपका अधिकार था?''

"राजकुमारी वासवदत्ता को देखने के बाद वह भी हाथ से जाता रहा।''

"क्या आप इतने निर्बल हो गए?''

"प्रेम और आकर्षण में मन ही दुर्बल हो जाता है। एक-एक क्षण उसके बिना भार-सा लगने लगा। अभी आपसे बातें कर रहा हूँ, अन्य किसी से इतने समय तक बातें नहीं करता....''

"अब समय बहुत थोड़ा रह गया। कहीं किसी ने सुन या देख लिया तो अर्थ का अनर्थ होते विलम्ब नहीं होगा। आषाढ़क से मेरी बातें हो चुकी हैं। यह तो आपको ज्ञात ही है कि उज्जयिनी राज्य में दो हाथी हैं—नडागिरि और भद्रवती। नडागिरि पर स्वयं नरेश चढ़ते हैं और भद्रवती वासवदत्ता के लिए है। भद्रवती बहुत तीव्रगायिनी है उसे नडागिरि ही परास्त कर सकता है युद्ध में नहीं, गति में।''

"राजपुत्री का क्या होगा?''

"महासेन की भावना से मैं पूर्ण परिचित हो चुका हूँ। उनकी इच्छा है कि उज्जयिनी में ही परिणय-संस्कार सम्पन्न हो....''

"मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि राजपुत्री को किसी भी मूल्य पर कौशाम्बी से ले चला जाय...''

"यह तो राजपुत्री की इच्छाओं पर निर्भर करता है....''

"राजकुमारी की इच्छाओं के लिए आप निश्चिन्त रहें। वह

मेरे साथ चरण में चरण मिलाकर अग्नि-पथ पर भी चल सकती हैं...."

"विन्ध्यपर्वत के शिखर पर पुलिन्द जाति के सरदार पुलिन्दक से भी मिलकर आया हूँ...."

"पुलिन्दक तो पिता जी के मित्र हैं न ?"

"हाँ, वही पुलिन्दक, वत्सराज की शतानीक से घनिष्ट मित्रता रही है। उनकी सेना हमारी सहायता के लिए तत्पर रहेगी...."

"मुझे विश्वास था, मेरे पितृतुल्य महामन्त्री मेरी मुक्ति के लिए अवश्य प्रयास करेंगे...."

"बसन्तक भी मेरी सहायता स्वरूप साथ हैं। कल जो प्रमुख द्वार पर एक लम्बा पेट वाला ब्राह्मण नाच-गा रहा था। सम्भवतः आपने उसे पहचाना ही नहीं...."

"दूर से देखा था...."

"राजपुत्री तो समीप से जाकर देख आयी थीं....अभी उनकी बाल्य-चञ्चलता गयी नहीं है..."

"आयु के अनुसार ही जीवन और शरीर में स्थिरता आती है। आप अपने विगत-क्षणों का स्मरण कीजिये...."

"अभी बसन्तक कहाँ होंगे..."

"नगर के प्रमुख राज पथ पर अपना प्रदर्शन कर रहे हैं। उनके पीछे बालकों का समूह घूमता-फिरता है। नारद जी के समान कभी यहाँ कभी वहाँ भटकते फिरते हैं।"

"इधर नहीं आयेंगे ?"

"सन्ध्या समय इधर भेज दूँगा। मेरी उपस्थिति में उनका आना आशंकाओं से परे नहीं हो सकता। बसन्तक का विकृत रूप और आकृति देखकर मुझे हँसी आ जायेगी और रहस्योद्घाटना की अधिक सम्भावना रहेगी...."

"आज किसी समय राजकुमारी को अपना मन्तव्य कहकर स्वीकृति ले लूँगा....और....निश्चित तिथि को हम लोग प्रस्थान कर देंगे...."

"राजपुत्री की बुद्धि पर ही सब कुछ निर्भर करता है। वे चाहें तो देवता का प्रसार कहकर सैनिकों को जो प्रहरी हैं, चेतनाहीन कर सकती हैं...."

"यह भी कोई कठिन कार्य नहीं है। सब कुछ सम्भव किया जा सकता है। यहाँ के रक्षक जो मेरे लिए नियुक्त हैं, मेरे इङ्गित पर चालित होते हैं। पहले वाला प्रतिबन्ध भी मुझ पर नहीं रहा। ज्यों ज्यों मेरे सपने वासवदत्ता के साथ उलझते गए त्यों-त्यों मेरा बन्धन सुलझता गया। सुरक्षा के सारे बन्धन शिथिल होते गए।"

"कल्पना से अधिक समय उज्जयिनी में लग गया। रुमण्वान से कहकर आया था कि एक मास के भीतर ही मैं कौशाम्बी लौट आऊँगा पर ऐसा सम्भव न हो सका...."

"आपको कैसे पता चला कि मैं उज्जयिनी में ही बन्दी हूँ...."

"ज्योंही उज्जयिनी का राजदूत लौट कर यहाँ आया; मेरी आशंका बढ़ी। महासेन के स्वभाव और प्रकृति से परिचित था, उससे कोई भी कार्य असम्भव नहीं...."

"यदि मेरे स्वभाव को विपरीत देखता तब तो...."

"प्राणों पर भी संकट आ जाने की आशंका की जा सकती थी..."

"आश्चर्य नहीं..."

"मृत्यु की आशंका से मेरे प्राण कभी सिहर नहीं पाते..."

"यह और बात है मगर वह आपको बड़ी सावधानी के साथ पक्ष में लाने की चेष्टाओं के साथ उपक्रम भी करता...."

"........."

"इतना ही नहीं वह आपके प्रत्येक क्षणों का अध्ययन करता रहा होगा। राजपुत्री आपकी ओर आकर्षित हो रही है क्या उसे इसकी सूचना न होगी?"

"आपका कहना सत्य हो सकता है...."

"हो सकने का प्रश्न ही नहीं उठता। मेरी आयु का अधिक भाग वत्सराज शतानीक की सेवा में बीत चुका है। जीवन में और कुछ प्राप्त नहीं कर सका, अनुभव मात्र ही मेरी सम्पत्ति है। उज्जयिनी-नरेश के रोम-रोम से परिचित हूँ...."

"राजमन्त्री से मेरी बातचीत हुई थी, उन्होंने कहा था आपकी इच्छा हो तो सम्राट से मिलने की चेष्टा करूँ...."

"सम्राट से आपका सम्मिलन हुआ?"

"मैंने मिलना अस्वीकार कर दिया।"

"कारण?"

"बन्दी होकर एक सम्राट दूसरे सम्राट से कैसे मिल सकता है?"

"आपका उत्तर भी कौशाम्बी की प्रतिष्ठा और स्वाभिमानी संस्कार के अनुकूल ही था। इससे अच्छा उत्तर और क्या हो सकता था...."

यौगन्धरायण की सशंक आँखें कभी-कभी इधर-उधर मुड़ जाती थीं। उदयन के प्राणों की आकुलता बढ़ने लगी थी। सम्भावित आशंकाओं से उसका अन्तर विचलित-सा हो उठता था। आशा की क्षीण-रेखा साहस दे जाती। यौगन्धरायण ने धीरे से उदयन के कानों में कुछ कहा। उदयन ने उत्तर में कहा—

"वह लग्न भी शुभ है...."

सहसा किसी की कोमल चरण-ध्वनि से उदयन और यौगन्धरायण के प्राण सिहर से उठे। उदयन ने गन्धर्वशाला से मिले राजद्वार की ओर देखा—राजपुत्री वासवदत्ता खड़ी थीं।

"आपने तो बहुत विलम्ब किया, राजपुत्री जी ?"

"आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"कष्ट से क्या तात्पर्य ? यों जीवन का प्रत्येक क्षण ही कष्ट-मय है...."

वासवदत्ता ने अमृतमयी आँखों से उदयन की ओर देखा।

"मुझे आज्ञा हो देव...." सन्यासी ने कहा।

"क्या आपका मन यहाँ नहीं लगता सन्यासी महाराज...." राजपुत्री बोली।

"कुशासन पर सोने वाले सन्यासी को सुमनों की शय्या पर कष्ट न होगा ?"

"यह लीजिये कुछ भोजन तो कर लीजिये...." कहती हुई राजपुत्री ने मिष्ठान्न और फल से भरा स्वर्ण-थाल सन्यासी के सम्मुख रख दिया।

"सन्यासी जी, यह राजपुत्री की अभिलाषा है, स्वीकार हो।"

"यह भोजन संन्यासियों के लिए नहीं...."

"ग्रहण कीजिये संन्यासी जी...." विनय भरे स्वर में राजपुत्री ने कहा।

संन्यासी ने भोजन स्वीकार किया।

"आज्ञा हो राजपुत्री...." संन्यासी ने निवेदन किया।

"इतनी शीघ्रता क्या है...."

"संन्यासियों का जीवन भी क्या है जैसे सरिता की प्रवाहमयी धारा, जिसे रुकना नहीं आता...."

कहते हुए संन्यासी ने आसन छोड़ दिया।

"जाते-जाते आशीर्वाद तो देते जाईये महारा...."

"सौभाग्यवती हो...."

राजपुत्री वासवदत्ता के प्राणों में संन्यासी के शब्द प्रतिध्वनि

बन कर गूँजते रहे। वह नीले आकाश की ओर मूक-मौन आँखों से देखने लगी। आकाश पर वासवदत्ता के जीवन-चित्र चलचित्र की तरह खिंचते-मिटते रहे।

"आज मेरे प्राणों की आकुलता बढ़ चली है...."

"मेरी ओर से कोई अपराध तो नहीं हो गया सम्राट...."

"यह मेरा अपना ही अपराध है, राजपुत्री जी। मैं आपके अपराधों को कभी अपराध की संज्ञा भी नहीं दे सकूँगा। कमल के फूलों से कहीं कोई अपराध की कल्पना भी कर सकता है?"

"कमल का फूल भी तो कभी-कभी लोचनों में चुभ जाता है...."

"उस चुभन से कभी कष्ट नहीं हो सकता....महर्षि जमदग्नि के आश्रम में मेरा शैशव बीता है। शैशव क्या यौवन का आरंभ भी.... आपके विषय में वहीं कुछ मित्रों से सुना था। आपके रूप और गुणों की प्रशंसा सुनी थी। आपको लेकर मैंने नई कल्पनाएँ की थीं, आँखों में सपनों के बीज उगाये थे।"

"वे सपने, सपने न रहे न! कल्पना भी कल्पना न रही फिर आपको कौन-सा कष्ट है?"

सम्राट उदयन के अरुण-अधर वासवदत्ता की ओर झुके। उदयन ने कहा—

"आपके सहयोग के बिना, अब मैं जीवत न रह सकूँगा...."

"ऐसा न कहिए सम्राट। आपके संकेत-मात्र पर अपने प्राणों को अर्पित कर सकती हूँ...."वासवदत्ता के स्वर में विश्वास बोल रहा था।

"वचन दीजिये...."

"वह तो बहुत पहले दे चुकी हूँ और आज भी दे रही हूँ...."

वासवदत्ता सम्राट उदयन के चरणों पर झुक गई। उदयन ने वासवदत्ता के गीले-लोचनों की ओर देखा। उसकी पलकें नीचे की

ओर झुकीं जैसे उसने उदयन को अपनी आँखों में सुरक्षित कर लिया हो।

पाँच

"सम्राट ?"

"राजपुत्री !"

"आज एक लम्बोदर पंडित आया है, जिसकी आकृति विचित्र लगती है।"

"कहाँ है ?"

"राज्योद्यान में...." वासवदत्ता ने कहा। उदयन को बसन्त का स्मरण हो आया किन्तु उसने कोई उत्सुकता प्रकट नहीं की। राजपुत्री की चञ्चल आँखों को देख उसे यह समझने में विलम्ब न हुआ कि यह उत्सुकता लंबोदर पंडित को देखने की है।

"आपकी उत्सुकता को मैं अनुभव कर रहा हूँ। आपकी इस बाल सुलभ चंचलता को देखकर मुझे स्वयं अपने शैशव का मधु-स्मरण हो रहा है। लगता है, आज उज्जयिनी का बन्दी नहीं उदयाचल के ऊँची-पर्वतमाला पर विचरण करनेवाला उन्मुक्त विहग हूँ। मेरे साथ मेरा अंतरंग मित्र दर्शक है, रुमण्वान है। मेरे हाथों में धनुष और बाण है। आज से दस वर्ष पूर्व के संसार में खो गया हूँ। कितने अच्छे थे वे दिन, कितनी मनोरम थीं वे रातें...."

"दर्शक....यह नाम तो जैसे कहीं सुना है...."

"कब सुना है, कहाँ सुना है ?"

"इतना स्मरण नहीं, सम्राट...."

"दर्शक मगध का राजकुमार है। बारह वर्षों तक हम दोनों साथ रहे हैं। संकट और सुख के अनेक क्षण दोनों ने एक साथ काटे हैं। स्वभाव का बहुत मिलनसार और कोमल है...."

"आप जा सकती हैं, आपको रोक रखना अच्छा नहीं...."

"कहीं जाऊँगी नहीं..."राजपुत्री बोली।

"तब ऐसी उत्सुकता कैसी ?"

"लंबोदर पंडित को यहीं बुलवाती हूँ....कंचन....ओ कंचन...." राजपुत्री ने अपनी सहेली को पुकारा।

सौन्दर्य प्रतिमा कंचन राजपुत्री के सम्मुख आ रही। उसकी आकृति पर भी उत्सुकता की रेखायें खिंच आयी थीं। उदयन ने व्यंग के साथ कहा—

"आपकी सखी भी आप से किसी अंश में कम नहीं...."

"क्यों आपको तो यह चंचलता अच्छी लगती है न ?"

उदयन ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तृष्णाभरी आँखों से वासवदत्ता की ओर देखता रहा।

"ऐसे न देखिये सम्राट कञ्चन के अधरों का सुमन मुरझा जायेगा...." राजपुत्री ने फिर कहा।

"अपनी छाया की ओर देख रहा हूँ। मेरी दृष्टि पर आरोप न लगाया जाय। स्वतन्त्रता न मिले, पर आँखों को तो इतना अधिकार मिल ही गया...."

"सब आपकी कृपा है...." उदयन ने कहा और मुस्कुरा दिया।

"कञ्चन, राज्योद्यान में एक लम्बोदर पण्डित आया है, उसे गंधर्व-शाला में बुला ला। बहुत विनोदी है। उसकी आकृति देखकर रोता हुआ, मनुष्य भी हँस देगा। अभी-अभी इस पथ से गया है...."

"आप ही की आकृति देखकर कौन है, जो रो दे...."

"वह मैं हूँ...."

"जा कञ्चन, विलम्ब न कर, रमता योगी है, कब कहाँ किस ओर चल देगा, क्या ठीक...."

कञ्चन चल पड़ी। उदयन ने कञ्चन की हिरनी-सी आँखों की ओर देखा। वासवदत्ता ने टोका—

"सम्राट...."

"अपराधी को क्षमा कीजिये, राजपुत्री जी...."

"ऐसा अपराध कभी क्षमा नहीं किया जा सकता...."

"पुरुषों की आँखें ऐसा अपराध सदैव किया करती है। आँखों को इतना ही आता है, और कुछ ये नहीं जानती...."

"ऐसी आँखों पर आवरण आवश्यक है। आवरण से दृष्टि को विस्तार मिलता है और विस्तार से कल्पना...."

"वह आवरण भी तो आपने छीन ही लिया। उसी क्षण जब आपने क्रोध के आवेश में आकर आवरण हटा दिया...."

वासवदत्ता की आकृति लज्जा से आरक्त हो उठी। बड़ी-बड़ी आँखों में कुछ ऐसा रङ्ग भर गया जैसे वे अकुलाकर बाहर आ जाना चाहती हों। वह क्षण भर के अज्ञात सपनों के जाल में उलझ गई। किसी के चरणों के नूपुर बज उठे। राजपुत्री ने पुकारा—

"कञ्चन...."

"महापंडित हूँ....पंडित....कञ्चन से मेरा क्या तात्पर्य...." लम्बोदर पंडित ने गन्धर्वशाला में प्रवेश करते हुए कहा।

उदयन ने लम्बोदर पंडित की ओर भेद-भरी आँखों से देखा और पूछा—

"आप क्या काम करते हैं, पंडित जी?"

"यों पूछिये—आप क्या नहीं करते पण्डित जी?" उदय ने दुहराया—

"आप क्या नहीं करते लम्बोदर पंडित जी ?"

"सब कुछ करता हूँ, खाता हूँ, पानी पीता हूँ, चलता हूँ, हँसता-रोता हूँ...."

"आपने अपनी चेष्टा ऐसी क्यों बना रखी है...."

"चेष्टा भी कहीं बनायी जाती है, देव ! वह तो स्वयं बन जाती है....इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं। सारा अपराध ईश्वर का है, जिसे खोजता फिरता हूँ...."

"आप रुग्ण प्रतीत होते हैं...."

"सम्भव है...." कहता हुआ लम्बोदर पंडित रो उठा। रोते हुए कहने लगा—

"यहाँ के शठ-बालकों ने बहुत कष्ट दिया। मार-मारकर मुझे आहत कर दिया है...."

राजपुत्री को लम्बोदर पंडित की दशा देखकर दया आ गई। वह बोली—

"आप यहीं रहिये। थोड़े ही दिनों में स्वास्थ्य लाभ हो जायेगा। रोते क्यों है ? राजवैद्य से आपके लिए औषधि बनवा दूँगी...."

लम्बोदर पंडित गन्धर्व-शाला के प्राचीरों के भीतर रहने लगा। धीरे-धीरे उसे स्वास्थ्य लाभ होने लगा। अब उदयन अकेला नहीं बसन्तक भी साथ लगा। गन्धर्व-शाला में यौगन्धरायण का प्रवेश निर्विघ्न था। आवश्यकतानुसार यौगन्धरायण आता और उदयन से मिलकर चला जाता। एक दिन राजपुत्री ने लम्बोदर पंडित से पूछा—

"आपको अब कोई कष्ट तो नहीं है ?"

"कोई कष्ट नहीं देवी जी....जीमें आता है भिक्षा माँगकर ही भोजन जुटाना है तो उज्जयनि का ही होकर रहूँ...."

"आप में कोई गुण है....?" राजपुत्री ने लम्बोदर पण्डित ने पूछा।

"मेरे शरीर में तो केवल गुण-ही-गुण भरा हुआ है, अवगुण एक भी नहीं। अधिक भोजन करना तो मेरे विशेष गुणों में से है। इन सारे गुणों के अतिरिक्त भी एक गुण और मेरे पास है..." लम्बोदर पण्डित ने अपने उदर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"वह क्या...." सम्राट ने उत्सुकता प्रकट किया।

"कथा बहुत सुन्दर कहता हूँ—राम की सुनिये या कृष्ण की भूत की या बैताल की। बहुत-सी कथाएँ मुझे स्मरण हैं...." कहता हुआ लम्बोदर पण्डित अपने आवास की ओर चला गया।

"बहुत ही दरिद्र ब्राह्मण है...." राजपुत्री ने कहा।

"दया का पात्र है...." सम्राट उदयन ने वासदत्ता का समर्थन किया।

"कञ्चन...."

"राजपुत्री जी...." कञ्चन बोली।

"सम्राट के लिए मधु...."

"कौन-सा मधु...." कञ्चन ने कहा जैसे उसके स्वर से आसव टपक पड़ा।

"आसव या कोई अरिष्ट...."

कञ्चन अन्तःपुर की ओर चली गई।

"आपकी आँखों का आसव ही कम मादक नहीं। एक बार ही एक घूँट पिया था, आज तक चेतना नहीं मिली। अपने आपको खो बैठा। अब आपकी क्या इच्छा है, आपको भी खो दूँ...."

"आसव पान करने से कोई किसी को खोता नहीं पाता ही है...."

"कभी-कभी आपके तर्कों से आहत हो जाता हूँ...."

"यौवन के क्षण कुछ ऐसे मादक होते ही है....सम्राट...."

राजपुत्री के हाथों में कञ्चन ने मधुपात्र रख दिया। कञ्चन के सहसा आ जाने से वासवदत्ता को चेतना हुई, उसने अपना उत्तरीय सँभाला और मधुपात्र में मधु रखकर उदयन के हाथों में रख दिया। वासवदत्ता को कञ्चन का वहाँ रहना भार-सा लगने लगा। विवशतावश वह कुछ कह नहीं पाई, मुस्कराकर रह गई। कञ्चन ने राजपुत्री के अधरों की मुस्कान को समझा नहीं। विनोदपूर्ण स्वर में राजपुत्री ने कहा—

"आज तू सम्राट की दृष्टि में गड़ गई है। कहीं कोई संकट न आ जाय...."

कञ्चन को राजपुत्री का आशय समझते देर न लगी। बोली—

"राजकुमारी अपने अन्तर की बात बोल रही हैं...."

"कञ्चनमाला को न छोड़िये राजपुत्री जी, वह मेरे समीप आना-जाना बन्द कर देगी। एक तो यों ही मेरा जीवन-भार हुआ जा रहा है तब तो जीना भी दूभर हो जायेगा। मेरी विवशता कोई क्या जाने...."

"पता नहीं वह कैसी विवशता है, जिसे कोई नहीं जानता.... एक पात्र और...." राजपुत्री ने आग्रह के साथ मधुपात्र आगे बढ़ा दिया।

"पीने को तो चाहे कितना भी पी जाऊँ, बेसुध नहीं हो सकता। किसी की आँखों का आसव ही मुझे चेतनाहीन कर सकता है...." कहते हुए उदयन ने कञ्चन की ओर संकेत किया। कञ्चन भाग कर अन्तःपुर की ओर चली गई।

"पुरुषों का स्वभाव भी विचित्र होता है, कञ्चन को आपने भगा दिया न?"

"वह तो अपने आप भाग गई...."

"चलिए अच्छा हुआ...."

"आपकी इच्छा भी यही थी....क्यों...." उदयन ने चुटकी ली।

"आपको एकान्त बहुत प्रिय लगता है न ?"

"मुझ पर आपकी कृपा रहती है। इस अनुग्रह के लिए आपका आभार स्वीकार करता हूँ...."

"आपकी उदारता के लिए...." राजपुत्री ने कहा।

"लम्बोदर पंडित कहाँ हैं ?"

"वह अपने आवास-गृह में पड़े हैं...."

"आज आपका कुछ समय लेना चाहता हूँ, आशा है, आपको कष्ट न होगा...."

"बार-बार कष्टों का स्मरण दिलाकर निश्चय ही कष्ट में डाल देते हैं, सम्राट...."

"यदि मैं आवश्यकता से अधिक समय लूँ तो...."

"सम्पूर्ण जीवन आपको अर्पण कर चुकी हूँ। समय कोई मूल्य नहीं रखता...."

"गन्धर्व-शाला में किसी के आने की सम्भावना तो नहीं...."

"कञ्चन के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं आ सकता....और कञ्चन पर अपना अधिकार है। उसकी उपस्थिति से किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं हो सकता। उससे किसी प्रकार की आशंका की सम्भावना नहीं...."

"क्या उसे सब कुछ ज्ञात है ?" उदयन के स्वर में आश्चर्य और विस्मय बोल रहा था।

"न कुछ जानते हुए भी बहुत कुछ जानती है। उसके पास भी हृदय है, आँखें हैं। वह जीवन को हमारी तरह देख सकती है, जीवन के मादक क्षणों का अनुभव करती है। यह प्रश्न दूसरा है

कि अभी उसके अवयवों का पूर्ण विकास नहीं हो सका है। पुरुष हों या नारी, जब उन्हें चेतना हो जाती है, सब कुछ समझने लगते हैं....कञ्चनमाला कोई अबोध बालिका तो नहीं। उसने एक दिन आपको लेकर मेरे साथ मीठा व्यङ्ग किया था, कहा था—'आजकल आपका मस्तिष्क कहीं अन्यत्र रहता है। कौशाम्बी के सम्राट बन्दी होकर नहीं आए, अब वे वस्तुतः बन्दी हो गए....'

उदयन के अधर धीरे से खुले और पुनः बन्द हो गये। बहुत कुछ कहना चाहकर भी वह कुछ कह न सका। मन की मन में ही रह गई। वासवदत्ता ने वास्तविक स्थिति का अनुभव किया। राजपुत्री ने कहा—

"अभी भी आपके अन्तर में कोई ऐसी ग्रन्थि है, जिसे स्पष्ट नहीं कर पा रहे हैं। जीवन की एक नन्हीं-सी भ्रान्ति भी आजीवन दुखदायिनी हो सकती है। क्या कहना चाह रहे थे आप? अभी-अभी आपके अधर खुले और बन्द हो गए...."

"कई वार आपकी आँखें खुली और बन्द हो गईं, आपने मुझे आँखों में बन्द कर लिया। राजभवन की ये प्राचीरें मुझे किसी भी क्षण मुक्त कर सकती हैं या अपने प्रयास से मुक्ति पा सकती हूँ, पर कभी आपकी आँखों से अपने को मुक्त नहीं कर पाऊँगा ..."

"आपको जो कुछ कहना हो, निःसंकोच कहिए...." राजपुत्री ने कहा और उदयन की ओर देखकर रह गई।

"अब यह प्रश्न उठाना कि मैं कैसे और क्यों बन्दी बनाया गया कोई विशेष महत्व नहीं रखता, फिर भी यह स्मरण दिलाना उचित है। आपके पिता जी ने मुझे निम्न-स्तर के प्रपञ्चों द्वारा बन्दी बना लिया, इस सम्बन्ध में आपको कुछ कहना है?"

उदयन के इस सत्य और आकस्मिक वार्ता ने राजकुमारी को क्षण भर के लिए मौन कर दिया। उसकी आत्मा बार-बार पुकार-

पुकार कर कह रही थी—अवन्तिराज ने अनुचित रूप से सम्राट उदयन को अपने अधिकार में किया। राजपुत्री ने कहा—

"मुझे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है। मैं स्वयं इसके लिए लज्जा का अनुभव करती हूँ। विगत दिनों की वार्ता में मैंने अपने पिता का सुरक्षात्मक पक्ष अवश्य ग्रहण किया था। सत्य कभी अस्वीकार नहीं किया जा सकता...."

"इस वातावरण में मेरा दृष्टिकोण क्या हो? इस सम्बन्ध में मैं आपकी पूर्ण सहमति की अपेक्षा रखता हूँ। इसलिए कि मैं आपको अपने से कभी भिन्न नहीं मानता...."

"मैं आपसे यही कहूँगी कि एक बार आप पिता जी के सम्मुख जाँय...."

"मुक्ति दान के लिए?"

"सम्राट...." वासवदत्ता ने कहा।

"यदि मैं न जाना चाहूँ तो...."

"यह अवधि इतनी शीघ्रता के साथ समाप्त होने की कल्पना क्या, सम्भावना भी नहीं की जा सकती। जीवन भी बहुत अमूल्य और अलभ्य वस्तु है....सम्राट...."

"यदि मुझे अपने जीवन का रञ्च-मात्र भी मोह न हो तो....?"

"तो मेरे जीवन के लिए ही...."

"यदि यह वत्सराज के संस्कार और पैतृक परम्परा से विपरीत आचरण रखना हो तो क्या आप चाहेंगी कि उदयन किसी के सम्मुख जाकर मुक्ति या जीवन की भिक्षा माँगे?"

राजपुत्री की आँखों में आँसू छलक आए। उसके आकुल-प्राण कोलाहल से भर उठे। अरुण-कपोलों पर विचार और चिन्ताओं की स्पष्ट रेखायें उभर आयीं। वह अकुलाकर बोली—

"कभी नहीं चाहूँगी....ऐसा कभी नहीं होने दूँगी सम्राट। मेरे

रोम-रोम में भी उज्जयिनी के राजवंश का शोणित प्रवाहित हो रहा है। मुझे अपने पिता अवन्तिराज के आचरण और संस्कारों को लेकर जीवित नहीं रहना है....''

उदयन ने देखा—राजपुत्री की आकृति रक्तिम आभा से पूर्णतः आलोकित हो उठी थी, जैसे उसकी आत्मा विद्रोह कर उठी हो। उदयन को संयोग मिला। उसने कहा—

"यदि मैं चाहूँ तो कौशाम्बी का सैन्य-बल ही नहीं अन्य कई राज्यों की सहायता और सहयोग के साथ उज्जयिनी पर आक्रमण कर सकता हूँ, परन्तु ऐसा मैं नहीं करने जा रहा। जिस माध्यम से आपके पिता जी ने मुझे बन्दी बनाया उसी माध्यम से अपनी मुक्ति का प्रयास भी करना चाहता हूँ। और उस माध्यम का मूल मेरुदण्ड आपको बनना होगा। इस सम्बन्ध में, मैं आपका स्पष्ट निर्णय चाहूँगा।"

"मैं उस माध्यम का इति-वृत्त जानना चाहती हूँ...."

"इसके पूर्व आपकी स्वीकृति अनिवार्य है...."उदयन के स्वर में दृढ़-निश्चय बोल रहा था।

"मैंने आपको वचन दिया है। पुरुष अपना वचन देकर निभा न सकें, और बात है। नारी जब एक बार वचन दे देती है, वह कभी अपनी पथ से विचलित नहीं हो सकती। मैं अपना वचन आपको दे चुकी हूँ, आज उस वचन का विश्वास भी दे रही हूँ...."

"राजपुत्री जी, मैंने मुक्ति का आयोजन कर लिया है और विश्वास है वह प्रयास कभी असफल नहीं हो सकता....सारी व्यवस्था लगभग हो चुकी है...."

"उसमें मुझे क्या करना है?"

"वह मैं उस दिन की परिस्थिति और वातावरण का मनन

करके ही बता सकूँगा। आज उस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकता, न कुछ सोचा ही है..."

"यदि कोई संकट आ गया तो...."

"भविष्यत्काल की चिन्ता मैं नहीं करता और क्षत्रिय-कुमारियों के पास ऐसा हृदय नहीं होता, जो आशंकाओं की कल्पना-मात्र से विचलित हो उठें...."

"ऐसा मैंने प्रसंगवश कह दिया है...." वासवदत्ता ने कहा।

उदयन के सम्मुख कल्पनायें नाच उठीं। नाच उठे नीले-पीले और लाल सपने। उसने वासवदत्ता की अलसित आँखों में देखा। राजपुत्री ने दृष्टि नीचे कर ली। कभी-कभी उसकी कमल की पंखुरियों सी पलकें ऊपर की ओर उठतीं और पुनः बन्द हो जातीं। उदयन को राजपुत्री की मानसिक स्थिति समझते विलम्ब न हुआ। उदयन बोला—

"राजपुत्री पुनः विचारो और तर्कों से उलझ गईं...."

"मस्तिष्क में विचारों और समस्याओं का आलोड़न संभव है। तर्कों का आरोह-अवरोह भी वहीं से ही उत्पन्न होता है....अभी जो आपने निदान दिया....सम्भव है मेरे मस्तिष्क में इससे भी उचित और अच्छा समाधान मिल जाय...."

"मैं आपके समाधान का हार्दिक स्वागत करूँ...."

वासवदत्ता के सामने रह-रह कर सपने बोल उठते थे और अब वह स्वयं को उज्जयिनी के राजभवन में नहीं, कौशांबी के राज्य-प्रसाद में देखने लगी थी।

"नारी का कार्य पुरुष के पथ का अनुसरण मात्र करना है। मैं सदैव आपकी छाया बनकर साथ रहूँगी और आनेवाली प्रत्येक आशंकाओं से संघर्ष करूँगी...."

"मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी, विश्वास था...."

"सम्राट...."

"जब तक पुरुष का पुरुषार्थ और नारी का नारीत्व जीवित है। संसार की कोई भी शक्ति उसे पराजित नहीं कर सकती...."

"मुझे क्या करना होगा, सम्राट...."

"उज्जयिनी की अंतिम सीमा पर जहाँ से विन्ध्याचल की पर्वत-माला आरंभ होती है। किसी अधिष्ठात्री देवी का मंदिर है जिनके दर्शन से चित्त की शांति प्राप्त होती है, साथ ही मनोकामनाओं की पूर्ति भी...."

"एक बार उस मंदिर में जाकर देवी का दर्शन भी कर लिया है...."

"आप पुनः देवी के दर्शन के लिए राजमंत्री से समय निश्चित कीजिये।

"इसके लिए मुझे राजमंत्री की आज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं। इतना अधिकार तो मुझे प्राप्त ही है। आप इसकी चिन्ता न करें। सारी व्यवस्था हो जायगी...."

"भद्रवती के लिए तो आषाढ़क को निश्चित करना होगा.... सुना है नडागिरि के अतिरिक्त उज्जयिनी का कोई भी हाथी उसकी गति में गति नहीं मिला सकता...."

"यह सत्य है, किन्तु युद्ध में भद्रवती को सम्राट का हाथी भी पराजित नहीं कर सकता...."

"क्या वह बहुत ही शक्तिशाली है....?"

"उसका पालक आषाढ़क भी कम शक्तिशाली नहीं और वह भद्रवती को अपना संपूर्ण समय देता है। भद्रवती को भर पेट भोजन कराये बिना वह भोजन नहीं कर सकता। आषाढ़क के अतिरिक्त अन्य किसी गजपालक से भद्रवती संतोषजनक काम नहीं दे

सकती। आषाढ़क को मैं स्वयं कह सकती हूँ? इसमें मेरी प्रतिष्ठा और मान-अपमान का प्रश्न है।"

"आपका कहना युक्तिसंगत लगता है। आषाढ़क की स्वीकृति लेने की चेष्टा की जायेगी, आप चिन्ता न करें...."

"पुरुष के रहते नारी को किसकी चिन्ता सता सकती है, भला....।"

"आपसे एक ही सहायता की आवश्यकता पड़ेगी, जिसे आप बड़ी ही सुगमता के साथ सम्पन्न कर सकती हैं। आपके द्वारा वैसा कई बार हुआ है...."

"सम्राट की आज्ञा...."

"रविवार को संध्या समय प्रसाद के बहाने जितने भी प्रहरी हैं, सबको मधुपान करा देना होगा। ऐसा मधु जो एक क्षण में बेसुध कर दे। सन्ध्या समय ही हम लोग प्रस्थान करेंगे....आप देवी के बहाने भद्रवती पर निकल जायेंगी और मैं आषाढ़क के साथ ही छिपकर बैठ जाऊँगा...."

"यदि यह रहस्य खुल गया तो...."

"यह रहस्य कभी खुल नहीं सकता। हम दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता....

"आषाढ़क...."

"आषाढ़क को इस रूप में सूचना नहीं है और वह स्वयं कभी खुल ही नहीं सकता...."

"यह विश्वास कैसे किया जा सकता है...."

"उसे तो देवी-के मन्दिर तक ही ले जाना है न? वहाँ मेरे सैनिक रहेंगे...."

"ऐसा न हो कि आषाढ़क के जीवन पर कोई सङ्कट आवे....उसने मेरी बड़ी-सेवाएँ की हैं...."

"आषाढ़क जैसे सहस्रों को आश्रय दिया जा सकता है। इसके लिए आपको विशेष चिन्तित नहीं होना है...."

"परन्तु यह सब विचित्र लग रहा है...."

"क्या उस दिन कुछ विचित्र नहीं लगा था, जब मैं बन्दी बना कर लाया गया? सबसे बड़े आश्चर्य की बात हुई कि मुझे सम्राट के सम्मुख उपस्थित न कराकर राजमन्त्री के समक्ष ले जाया गया। उस क्षण मुझे ऐसा लगा जैसे सारे कौशाम्बी का स्वाभिमान देखते-देखते जर्जर हो उठा। उज्जयिनी-नरेश ने मेरी प्रतिष्ठा के विषय में कुछ भी नहीं सोचा। वह अग्नि-शिखा आज तक मेरे प्राणों में जल रही है। अपने आप जलता जा रहा था परन्तु कभी किसी से कहा नहीं....आपसे भी नहीं। आज कहना भी नहीं चाहता था, आपने मेरी सोयी हुई भावनाओं को उकसा दिया और मुझे विवश होकर कहना पड़ा—"

"सम्राट....आपने मुझे...." कहते-कहते रुक गई।

"राजपुत्री....अपने अन्तर की दुर्बलता से पूर्ण परिचित हूँ और आपके मन को भी माप चुका हूँ...."

"मुझे सदैव अपने से आगे पायेंगे...." राजपुत्री का गीला स्वर था।

"कञ्चन को पुकारा जाय...."

"क्या मेरी सेवा स्वीकार नहीं की जा सकती?"

"आपको कष्ट होगा...."

"ऐसा कष्ट मैं प्रसन्नतापूर्वक सहने को तत्पर हूँ...."

"आज न जाने क्यों शरीर में शिथिलता आ गई है। कुछ भी करने का जी नहीं करता। आप कञ्चन को पुकारिये...."

"कञ्चन! कञ्चन...." राजपुत्री ने पुकारा।

"कोई आज्ञा है, राजपुत्री जी...." कञ्चन ने पूछा।

"सम्राट तुम्हारा स्मरण कर रहे थे...." वासवदत्ता ने कहा और अपनी दृष्टि सम्राट उदयन के उन्नत-कपोलों पर ले गई।

उदयन ने वासदत्ता की ओर देखा। बहुत कुछ कहना चाहकर भी कुछ कह न सका। उदयन के अधर आगे बढ़ कर धीरे से खुले। एक नन्हा-सा शब्द गूँजकर रह गया—'मधु'। राजकुमारी वासवदत्ता ने मधुकासव भरी आँखों से उदयन की ओर देखा।



'जीवन एक धारा है और यौवन एक ज्वार। धारा के जीवन की सार्थकता अविरल-गति से बहते जाने में है, ज्वार का अस्तित्व उत्थान-पतन में। मेरा जीवन भी उस अजस्र धारा के समान है, जो शैल-पर्वतों पर चढ़ती हुई उतरकर नीचे समतल भूमि पर आ गयी हो। आज मेरे सम्मुख सम्राट उदयन और उज्जयिनी का पितृ-गृह, दोनों अपनी-अपनी छाया लिए खड़े हैं। एक की प्राप्ति में एक का त्याग आवश्यक है। उज्जयिनी के त्याग के बिना सम्राट उदयन नहीं मिल सकते और उदयन के त्याग के बिना उज्जयिनी का पितृ-गृह नहीं मिल सकता। सम्राट उदयन के पास जीवन की धारा है, यौवन का ज्वार भी, जिसे जीवन का सर्वस्व दे चुकी हूँ, आकुल-अधरों के गीत आँखों की दृष्टि और अंतर का कोलाहल जिस पर अर्पण कर चुकी हूँ। उदयन के साहचर्य ने यह सिद्ध किया है—पुरुष और नारी जीवन की दो ऐसी रेखायें हैं कि एक के बिना दूसरे का जीवन अपूर्ण रह जाए। आज मैं ऐसा अनुभव करने लगी हूँ। एक क्षण भी उदयन से विलग रहकर जीवित नहीं रह सकती।

उदयन बाँसुरी का वह स्वर है, जिसकी प्रतिध्वनि मेरे जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों से आती रहती है। अब मैंने स्वयं को उदयन में लय कर दिया है....'राजपुत्री वासवदत्ता अपने-शयन-कक्ष में, आने वाले प्रभात की आकुल प्रतीक्षा कर रही थी। रह-रहकर उसकी आँखें वातायन पर जा लगतीं। आकाश के तारे आँखों में चुभने लगते और वह निश्चेष्ट होकर आँखें बन्द कर लेती।

सहसा किसी का मादक स्पर्श पाकर राजपुत्री के सपने टूट गए। वह सिहर कर उठी और आँखें मींचती हुई बोली—

"कंचन...."

"राजपुत्री जी ..."

"आज मैंने बहुत ही मोहक और आकर्षक सपना देखा है। तुम्हारे आने से वह घड़ी अनजाने में टूट गई। यदि वे सपने साकार हो पाते...." राजपुत्री ने कहा।

"आपकी इच्छा भर का विलम्ब है...सपने तो सपने हैं, संसार आपके चरणों को चूम सकता है..."

"तुम्हें क्या मालूम वे सपने कितने मादक थे...."

"दिन की कल्पना ही रात में सपनों का रूप ग्रहण कर लेती हैं...." कंचनमाला ने व्यंगपूर्ण स्वर में कहा।

"वे सपने वैसे थे जिसकी कल्पना दिन में तो क्या रात में भी नहीं की जा सकती....' वासवदत्ता ने कहा और कंचन को अपनी भुजा में बाँध लिया। कंचन का उत्तरीय धरती पर जा गिरा। वह अपना उत्तरीय सँभालती हुई अपने को राजपुत्री की भुजाओं से मुक्त करने का असफल प्रयास करने लगी। कंचन ने कहा—

"यदि भुजबंधन में ही बाँधना है तो किसी और को बाँधें तो कुछ रहे। मुझे बाँधकर आपको क्या मिलेगा। व्यर्थ ही तृष्णा बढ़ेगी...."

"तुम जानती हो तृष्णा का कैसा रूप होता है ?"

"हाँ, जानती हूँ..."

"तो बताओ...."

"ऐसा...."कहती हुई कंचन ने राजपुत्री की आँखों की ओर विनोदपूर्ण भाव से संकेत किया।

"तो क्या तृष्णा आँखों में वास करती है ?"

"नहीं, आँखों के पथ से हृदय-लोक में उतर जाती है। ज्यों-ज्यों तृप्ति मिलती जाती है, प्यास को जीवन मिलता जाता है..."

"सच कहती हो कंचन! आज मेरे आकुल-हृदय की प्यास अपना विद्रोही स्वरूप धारण कर बैठी है। एक-एक क्षण एक-एक युग की आयु लिए मेरे सम्मुख खड़ा है, जिसकी परिधि में मेरे सपनों का संसार सिमटता हुआ दीख रहा है...."

"सूर्योदय हो रहा है, राजपुत्री जी...."

"अभी बहुत रात शेष है, सितारे आकाश पर हैं और पक्षी-दल डाल पर। रात के अंतिम क्षण काटे नहीं कटते...."

"रात के अंतिम और संध्या के प्रथम क्षण दोनों जीवन के लिए दुखदायी होते हैं। कंचन क्या तुम्हें भी रात नींद नहीं आयी ?"

"ऐसा तो नहीं हुआ...."

"तुम्हारी आँखों की अरुणाई और अलस-शरीर का अवगुंठन यह कह रहा है कि रात अच्छी तरह नहीं बीती है...."

"आपकी प्रतीक्षा में मेरी आँखों में भी नींद न आ सकी। कई बार आकर आपको देखा मगर आपकी आँखें वातायन की ओर लगी थीं....न जाने किसकी प्रतीक्षा में...."

"प्रतीक्षा मैं नहीं करती..."

"कोई दूसरा करता है, जिसकी समवेदना में आपने रात को आँखों में पी लिया है...." कंचन ने कहा।

"समवेदना की बात न छेड़ो। समवेदना भी व्यर्थ की होती है...."

"समवेदना पर ही तो आपने अपने आपको...." कहती हुई कंचन ने अपने को रोक लिया।

"इस चर्चा से मेरा हृदय बैठा जाता है...वेदना और समवेदना का प्रश्न न उठाओ..." कहती हुई राजपुत्री अपने शयन-कक्ष से बाहर आ रही और अपना दाहिना हाथ कंचन के कन्धे पर रख दिया। कंचन अपनी वेणी संभालती हुई आगे चल पड़ी।

वासवदत्ता ने गधर्व-शाला में पहुँचते ही हाथों में वीणा सँभाला और लेकर बैठ गई। दो क्षण बाद उसकी कोमल अंगुलियाँ तारों पर नृत्य कर उठीं। आरोह और अवरोह की समविषम स्वर-लहरी से से दिग्मण्डल प्रतिध्वनित हो उठा।

उदयन अपने शयन-कक्ष में अर्द्ध-निद्रित अवस्था में चिन्ताओं और विचारों के साथ उलझा था। सहसा वीणा के मादक स्वर-संधानों से आहत हो उठा। तन्मय होकर बहुत देर तक सुनता रहा और जीवन के वेदना भरे गीतों को गुनगुनाता रहा।

राजपुत्री की चञ्चल आँखें इधर-उधर नाचती रहीं और अंगुलियाँ अबाध-गति से तारों पर चलती रहीं....चलती रहीं।

उदयन अपने को रोक न सका। अपनी घोषवती वीणा को हाथों में लेकर चल पड़ा। राजपुत्री की तन्मयता और तल्लीनता देखकर आश्चर्य से भर उठा।

"बहुत सुन्दर....बहुत सुन्दर....भैरव के इन मादक सुरों ने मेरे सपनों को सिहरा दिया..."

राजपुत्री की अंगुलियाँ थम गईं तारों पर....। उदयन से न रहा गया। बोला—

"बजने दीजिये इन तारों को। झंकार से जीवन को संबल मिलता है। संगीत जीवन की एकान्त तन्मयता का नाम है। जीवन में जब तक संगीत है तभी तक जीवन जीवन भी है....इन तारों के सिहरन में मेरा जीवन बोलता है...."

राजपुत्री की अचेतन आँखें उदयन की आँखों से जा लगीं। वह देखती रह गई। उसके अधर खुल न सके। उदयन ने पुनः कहा—

"राजपुत्री..."

"अपनी वीणा के तारों को सिहराकर आपने जीवन का संगीत सुनाया। अब मैं अपने जीवन का संगीत आपकी वीणा पर सुनना चाहती हूँ....सम्राट...." वासवदत्ता ने कहा और दूसरे क्षण उदयन की अँगुलियाँ चञ्चल हो उठीं।

वासवदत्ता की पलकें बन्द हो गईं। मीड़ और मूर्च्छना की प्रत्येक लहर उसके अभ्यन्तर में सिहरन पैदा करने लगी। उसके चरणों के नूपुर मुखर हो उठे। देखते-देखते वह विक्षिप्त-सी हो उठी। कंचन ने कहा—

"वीणा न बजाइये सम्राट...."

"राजपुत्री...." उदयन का आर्द्र-स्वर था।

"मेरे प्राण मर्मर करने लगते हैं और मर्मस्थल मसक-मसक उठता है....वीणा न बजाईये....सम्राट वीणा न बजाईये...."

उदयन ने वीणा को राजपुत्री के हाथों में सौंपते हुए कहा—

"नहीं बजाऊँगा....वीणा।"

"आज मेरा चित्त चञ्चल हो उठा है। इतना चञ्चल, जितनी चञ्चल आपकी अंगुलियाँ...."

"ऐसा हो जाना संभव है, स्वाभाविक है। जीवन की तन्मयता हृदय से सम्बन्ध रखती है...."

"कञ्चन..."

"राजपुत्री जी आज्ञा हो....?"

"आज राज्योद्यान के सरोवर में स्नान करने की अभिलाषा है...."

"क्या इसके लिए प्रबंध किया जाय?"

"अवश्य...." वासवदत्ता ने कहा। कंचन चली गई। वासवदत्ता ने उदयन की ओर देखा। उदयन से न रहा गया—

"आज दो प्राणों की परीक्षा है...."

"सम्पूर्ण रात्रि को आँखों में पी गई, दिन को जैसे-तैसे काट ही लूँगी....आज मैं कितनी कातर हो उठी हूँ। आप इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। एक पुत्री के लिए पितृगृह का मोह कितना बड़ा मूल्य रखता है, आप जानते हैं...."

"आपकी आकुलता का अनुभव कर रहा हूँ...जीवन के ऐसे कोलाहल भरे क्षणों में मनुष्य की विवशता कुछ ऐसी ही दिशा की ओर ले जाती है..."

"आज हम जिस दिशा की ओर जा रहे हैं, उसके पथ में घृणा, अपमान, युद्ध और मिलन की आशङ्का है। चारों में कौन सबसे पहले आ जाय, कहना कठिन है...."

"परन्तु समर्पण के बिना जीवन की आकांक्षा नहीं रखी जा सकती..."

"वह तो मैं बहुत पूर्व आपको प्रदान करचुकी हूँ..."

"समर्पण का अर्थ जीवन का समर्पण है। कंथ पर कुछ भी रखे बिना आने वाले दाँव की आशा नहीं की जा सकती...."

"मैंने अपने आपको दाँव पर रख दिया है...."

"राजपुत्री, आज चित्त को अस्थिर रखने से सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा। साहस और शक्ति से काम लेना चाहिए...."

"आवश्यकता आने पर मेरा नारीत्व साथ देगा। नारीत्व ही नारी की सबसे बड़ी सम्पदा है। उसके सम्मुख संसार की कोई भी शक्ति ठहर नहीं सकती...."

"देवी-पूजन वाली बात अपने पिताजी को सुना दें तो कम से कम उनके लिए अच्छा हो, जो अपने प्राणों का भय छोड़कर आज हमारा सहयोग देने जा रहे हैं..."

"आप इसकी चिन्ता न करें सम्राट, सारी व्यवस्था कर लूँगी...."

"संध्या समय देवता या देवी का प्रसाद कहकर प्रहरियों में मधु-वितरण कर दीजिये। मधु-वितरण का कार्य यदि स्वयं आप ही करें तो और अच्छा रहे। इतनी पर्याप्त-मात्रा में मधुपान कराया जाय कि किसी की चेतना साथ न रहे। नडागिरि के गजपालक पर विशेष ध्यान रहे...."

"ऐसा ही होगा सम्राट...." राजपुत्री ने विश्वास दिलाते हुए कहा।

"विलम्ब न करें, राजपुत्री जी....सरोवर के तट अभी एकान्त हैं...." कहती हुई कञ्चन ने उदयन के शयन-कक्ष में प्रवेश किया।

"आज्ञा हो तो...."

"आप जा सकती हैं, कञ्चन को नहीं जाने दूँगा। किसी का अकेला-जीवन कितना भार हो जाता है, आप नहीं जानतीं...."

"राजपुत्री नहीं जानतीं....मैं जानती हूँ...." कञ्चन ने कहा और वासवदत्ता की अँगुली पकड़ कर खींचती हुई प्रकोष्ठ से बाहर निकल गई।

"साधना के लिए एकान्त ही अधिक श्रेयस्कर होता है। एकान्त

में बुद्धि भी साथ देती है। सोचिये, समझिए, अपने विषय में, राजपुत्री जी के विषय में...."

"आज मैं कञ्चनमाला के विषय में अधिक सोच रहा हूँ, सोच रहा हूँ क्या करूँ? मेरी बुद्धि काम नहीं करती...."

"आज मैं भी कञ्चन के विषय में सोच रही हूँ, न जाने क्यों बार-बार तुम मेरे प्राणों में आ जाती हो...."

"यह राजपुत्री की उदारता है। कौशाम्बी के निवासी मेरे विषय में क्यों सोचने लगे?"

"कञ्चन ने अर्थ का अनर्थ समझ लिया...." उदयन ने वासवदत्ता की ओर देखते हुए कहा।

"तुम अभी तक समझ नहीं सकी कञ्चन कि तुम्हें लेकर मुझे कितनी चिन्ता है...."

"देवी-पूजन को भी चलना है न?" कञ्चन बोली।

"देवता-पूजन को भी...." राजपुत्री ने कहा।

"सम्राट आज एकान्तवास करेंगे तब न ज्ञात होगा कि बन्दी-जीवन में क्या आनन्द है...." कहती हुई कंचन राजपुत्री के साथ सरोवर की ओर चल पड़ी।

राज्योद्यान से निकल कर वासवदत्ता सरोवर के तट पर पहुँची और बीच में खिले कमल के श्वेत-नील कुसुमों की ओर देखने लगी। कंचन ने अपना पाँव पानी में लटका दिया। जल में हिलकोरे उठे। हिलकोरों के भय से कमल के हरे-हरे डण्ठल सिहर उठे और एक मधुप पंखुरियों से निकल कर उड़ चला। वासवदत्ता की आत्मा सिहर उठी। यह मधुप रस पीकर उड़ चला?

राजपुत्री के समक्ष सम्राट उदयन का चित्र उतर आया। कभी वह कंचन की ओर देखती, कभी श्वेत-नील फूलों की ओर तो कभी-कभी दूर-सुदूर-पथ पर भागते हुए मधुपों की ओर।

"कञ्चन....इस मधुप को देखकर मेरे चित्त में अशान्ति छा गई है...."

"यह सिद्धान्त कितना प्राचीन पड़ गया है फिर भी इसके पीछे संसार चल रहा है। यदि उस निश्चेष्ट मधुप के पास इतनी चेतना या शक्ति होती तो कमल के डंठल तो क्या जड़ तक को उठाकर ले जाता।"

"मधुपों के जीवन की सार्थकता तो रस चूस कर उड़ जाने में ही है...."

"तो यह कोई चिन्ता का विषय नहीं है, जबतक कमल के फूल में रस है, मधुपों की टोली आकर रस चूसती है, जब यह फूल नीरस हो जायेगा, कोई देखने भी नहीं आयेगा। फूल को क्या ? उसे एक मधुप चूसे या अनेक...."

"तब तो तुम पुरुषों के लिए बहुत उदार प्रवृत्ति रखती हो..."

"पुरुषों का स्वभाव क्या कम उदार होता है ? सम्राट उदयन को देखिये। आप पर कितना अनुग्रह रखते हैं..."

"चल हट, पता नहीं आज क्या देख लिया है तूने...."

"अपना ही प्रतिबिम्ब दर्पण में देख लिया था...." कञ्चन ने कहा और सरोवर में समा गई।

"कभी-कभी अपनी आकृति देख लेने पर भी शुभ-अशुभ की आशंका होने लगती है..." वासवदत्ता ने कहा।

"तो आज संध्या को देवी-पूजन के लिए प्रस्थान करना है न ?"

"तुम्हें भी चलना है...."

"मुझे तो आपने कभी नहीं कहा...."

"आनन्द के अतिरेक में कभी-कभी अपने आपको भूल ही जाती हूँ, अपने साथ ही तुम्हें भी भूल जाती हूँ। तुम्हें अपने व्यक्तित्व

से कभी भिन्न नहीं मानती....कञ्चन ...” कहती हुई वासवदत्ता की आँखों में आँसू भर आए।

“आपने अपने को कितना रहस्यमय बनाये रखा, यह मैं जानती हूँ। आज देवी-पूजन का लक्ष्य बनाकर क्या होने जा रहा है, क्या यह नहीं जानती ?”

राजकुमारी वासवदत्ता का शरीर रक्तहीन हो गया। वह जड़ीभूत-प्रतिमा की तरह अपलक पलकों से कञ्चन की ओर देखती रह गई। आशंकाओं की अज्ञात चरण-ध्वनि से उसके प्राण क्षण भर के लिए अन्दोलित हो उठे। वासवदत्ता ने सरोवर में प्रवेश करते हुए कहा—

“यदि मैंने अपने जीवन को गुप्त रखने की चेष्टा की होती तो तुम क्या तुम्हारी छाया भी नहीं जान पाती। कंचन को इसके लिए कोई विषाद है ?”

“नहीं, राजपुत्री कंचन को प्रसन्नता है....” कंचन बोली।

दोनों ने स्नान किया। क्रीड़ायें कीं और कमल के फूल तोड़े। वासवदत्ता कंचन के साथ अधिष्ठात्री-देवी के सम्मुख आ खड़ी हुई। गौरी का पूजन किया और अपने शयनागार में प्रविष्ट हुई। दर्पण के सम्मुख जाकर अपने शरीर निहारने लगी। जीवन और यौवन की कल्पनाएँ साकार हो उठीं। बालों को सँभालकर अपनी वेणी में फूलों का गुच्छा बाँधती हुई बाहर होने लगी। सहसा कंचन ने आकर उसे अपनी भुजाओं में बाँध लिया। बोली—

“अपने विषय में कुछ भी निर्णय करने के पूर्व आपने सोचा नहीं....”

“विवशता कभी जीवन के लिए वरदान सिद्ध होती है, कभी अभिशाप। यह मेरी विवशता ही समझो। भविष्य के क्षणों पर किसी का अधिकार नहीं होता....”

"मगर भविष्य के लिए सोचने-विचारने का अधिकार तो सबको है...."

"अब तुम मेरे निर्णय का भी समर्थन करो, अपने लिए नहीं तो मेरे लिए ही। यदि कौशांबी सम्राट को मेरे व्यक्तित्व से निकाल दिया जाय तो मेरे पास कुछ भी शेष नहीं बच सकता। जीवन जब गीतों में में लय हा जाता है तो वह दिशाओं का हो जाता है...."

वासवदत्ता के लोचन भर आए। वह मन ही मन सोचने लगी—'राजभवन की प्राचीरें मेरे स्वर से गूँजती रहती थीं। मुझे देखे बिना पिता जी को विश्राम नहीं मिलता था। सहेलियों के साथ एक युग से अधिक बीत गया। आज एक अपरिचित अतिथि के साथ मैंने अपने को बन्दी बना दिया। ऐसा अतिथि जो बन्दी बना कर लाया गया था।' विक्षिप्त सी राजपुत्री अपने शयन-कक्ष से बाहर आकर मुस्कराने लगी। सखियों ने देखा, मुस्कुरा कर चली गई। वह अपने मन की आकुल भावनाओं को छुपाने की चेष्टा करती हुई, गंधर्व-शाला की ओर बढ़ी। उदयन ने देखा—

"आपकी विवशता और अंतर की आकुलता को आपसे अधिक अनुभव कर रहा हूँ। ऐसे तो जीवन ही वियोग और संयोग के सम्मिलन से निर्मित होता है। आज का वियोग एक ऐसा क्षण है, जो जीवन में एक बार ही आता है। इसीलिए इसका अधिक महत्व भी है। घटना कुछ ऐसी अप्रिय हो गई कि रूप-रेखा ही बदल गई। आपसे पहले भी कई बार कहा है—कौशांबी परंपरागत की प्रतिष्ठा में ही आपका स्वाभिमान सन्निहित है..."

"आप मेरी ओर से चिंतित न होंगे। मोह ममता जीवन के साथी हैं। जिसके पास हृदय है, उसी के पास ममता भी होती है..."

"मुझे इसका दुख है कि मेरे कारण ही आपको इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है...."

"आप पुरुष हैं, किसी भाँति सहन कर सकते हैं। नारी प्रकृति है। प्रकृति का अङ्ग-अङ्ग कोमल होता है, वह सह नहीं सकती...."

"आज मैं स्वयं इतना द्रवित हो उठा हूँ कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपने आपको अवन्तिराज के सम्मुख भी उपस्थित कर सकता हूँ..."

"अब ऐसा कदापि नहीं हो सकता। पिता जी ने जिन प्रपञ्चों के माध्यम से आपको पराजित करने की चेष्टा की है वह निन्दनीय ही नहीं घृणास्पद भी है...."

"इस प्रसङ्ग को स्थगित कर देना ही उचित है। आज हमारे जीवन का नया इतिहास आरम्भ होने जा रहा है—जिसके प्रथम अध्याय में ही उपसंहार भी निहित है..."

"प्रेम और वासना के आवेश में आकर मनुष्य कभी-कभी अपने पथ से विचलित भी हो जाते हैं...."

"इसलिए कि प्रेम स्वयं नेत्रहीन होता है...."

"आज का दिन बहुत ही चञ्चल हो उठा है। रात काटे नहीं कट रही थी और दिन को मानो पंख लग गये हों। अभी-अभी सूर्योदय हुआ था और अब आकाश का दिनमान धरती के अधरों पर अपने अधरों को झुकाने लगा है। धरती लजवन्ती बधू-सी सिहर-सिमट कर छोटी हुई जा रही है। क्षितिज भी समीप आने लगा है। दिशायें एक दूसरे से मिलने लगी हैं और...."

"और ?" उदयन ने विस्मित होकर कहा। उसकी आँखों में उत्सुकता बोल रही थी।

"और दो प्राणों की आकुलता एक होकर जीवन की ओर

चलने लगी है। जीवन के बीते दुर्लभ क्षण, छाया बनकर साथ चलने लगे हैं....''—कहती हुई वासवदत्ता का स्वर आँखों से आँसू बनकर निकल गया।

''आँसुओं का स्वभाव भी कितना निर्मम होता है राजपुत्री! वे दो क्षण के लिए भी रुक नहीं सकते। रूठकर चल पड़ते हैं....''

''मनुष्य को आँसुओं का सहारा न होता तो वह पीड़ा और वेदना के असह्य भार से दबकर न जाने कब का टूट चुका होता।''

''आपने आँसुओं की नयी परिभाषा दी है।''

''आँसू हर्ष के हों या विषाद के। सौंदर्य का एक ही रूप दोनों को प्राप्त है....''

''आज आप पिताजी से मिलने गई थी....''

''मिल न सकी, दर्शन मात्र हो सका....'' वासवदत्ता की आँखों में आँसू आ गए। उदयन की आँखें वासवदत्ता की ओर गईं तो पुनः लौट न सकीं। उदयन ने कहा—

''क्या कभी आपके मस्तिष्क में ऐसी आशंका भी उठती है कि उज्जयिनी आपके लिए सपना बन जाय?''

''उज्जयिनि को कल तक सत्य समझती रही, आज सपना समझ रही हूँ। इतना ही नहीं कल मेरा शत्रु भी बन बैठेगी...'' वासवदत्ता ने उदयन की ओर देखते हुए कहा। उदयन की आँखें आशंकाओं से सिहर उठीं, दो क्षण के लिए।



सात

किरणों की सेना सन्ध्या के आँगन में आ चुकी है। सन्ध्या के अरुण-कपोलों पर भय और विस्मय की रेखायें खिंचने लगी हैं। धरती और आकाश के पथ पर कोलाहल छाने लगा है। अन्धकार का विराट रूप ज्योति-पुरुष को अपनी सबल बाँहों में बाँध लेने को आगे बढ़ चला है। किरणें तरुवर की फुनगी-फुनगी से उतर कर पुलिनों पर आ गई हैं। विहगों की पंक्तियाँ अपने नीड़ों की ओर उड़ी जा रही हैं।

शयन-कक्ष में लेटी हुई वासवदत्ता की आँखों में तारों ने देखा। वह चौंक उठी। सिहरे स्वरों में उसने पुकारा—

"कंचन...." अपने चरणों की मादक ध्वनि से संगीत मुखरित करती हुई कंचन ने कहा—

"राजपुत्री जी की आज्ञा की प्रतीक्षा है...."

"उज्जयिनी मेरे जीवन का अंतिम क्षण है। प्राणों की आकुलता विश्राम भी नहीं लेने देती...."

"संयोग और वियोग की दो समानान्तर रेखाएँ, जीवन के साथ चला करती हैं। इन्हीं टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से ही जीवन बनता है, जीवन के सपने बनते हैं...."

"आकर्षण भी क्या है, जो क्या से क्या करने के लिए विवश कर देता है..."

"आकर्षण यौवन की वह लहर है, जिसके समीप आकर मनुष्य

अपना सर्वस्व भूल जाता है। त्याग के बिना प्राप्ति भी तो असंभव है...''

''यह कठोर सत्य कहा तुमने। क्या तुम्हें कभी ऐसा अनुभव नहीं होता?''

''आपको देखकर मुझे अपना भी स्मरण नहीं आता...राजपुत्री जी। आज उज्जयिनी की आभा कौशांबी जा रही है, ऐसी आभा जिससे राजभवन की सखियों को जीवन और यौवन का नवीन आलोक मिलता रहा है....'' कंचन ने आँखों के आँसू पोंछते हुए कहा।

''यह तुम्हें कैसे विश्वास हो गया कि तुम्हें छोड़कर मैं एक क्षण भी जीवित रह सकती हूँ, कंचन....'' वासवदत्ता ने कंचन की आँखों में आँखें डालकर कहा।

''यह आपकी महान उदारता है....''

''देखो तो सम्राट क्या कर रहे हैं?''

कंचन के शिथिल-चरण गतिमान हो उठे। अपना आँचल सँभालती हुई ज्यों ही कंचन बाहर हुई कि वासवदत्ता ने पुकारा—

''सुनो तो....'' कंचन ठिठककर खड़ी हो गई।

''तुमने सम्राट का तात्पर्य क्या समझा?''

''संभवतः आपका लक्ष्य अवन्तिराज की ओर था....''

''नहीं, कौशांबी की ओर... कौशांबी के उस बन्दी सम्राट की ओर जिसने मेरे साथ ही तुम्हें भी बन्दी बना लिया, लोहे की कड़ियों से नहीं....''

''लोहे की कड़ियों की अपेक्षा प्रेम और सहानुभूति की डोर अधिक सबल होती है....''

''वीणा की मधुर ध्वनि ने मेरे जीवन के प्रत्येक अंगों को अपनी लहरों में समेट लिया। आज कौशांबी सम्राट के समक्ष मेरा....'' कहती हुई राजपुत्री ने अपने को रोक लिया।

"आत्म-समर्पण हो गया..." कंचन ने वासवदत्ता के अधूरे वाक्य की पूर्त्ति की।

"अच्छा, कंचन जाकर देख तो...मुझे भय है कहीं तू भी आखेट न बन जाना...."

"जब स्वयं राजपुत्री आखेट हो चुकी हैं तब मेरा क्या...." कहती कंचन गंधर्व-शाला की ओर चली गई।

वासवदत्ता कभी दर्पण में अपनी आकृति देखती और कभी वातायन के प्रहरी तारों को देखकर झुँझला उठती। वह मन ही मन सोचने लगी—'आज धरती मेरी ओर अपने विस्फारित लोचनों से देख रही है, दिशाएँ गंभीर हो उठी हैं, आकाश के तारों ने मौन धारण कर लिया है। कभी-कभी पश्चिमी पवन का झोंका मुझे चेतन कर जाता है। यह अपराध मैं अपने लिए नहीं अपने यौवन के लिए कर रही हूँ और सच पूछा जाय तो कौशांबी के लिए। मेरा यह अपराध उज्जयिनी-नरेश के पापों का सफल प्रायश्चित भी कहा जा सकता है...." सहसा किसी का पदचाप सुनाई पड़ा। वासवदत्ता ने कहा—

"कौन? कंचन...."

"सम्राट उदयन संन्यासी से धर्म और संस्कृति पर विवाद कर रहे हैं...."

"संन्यासी भी विचित्र जीव है। जीवन के प्रत्येक विषयों पर शास्त्रार्थ कर सकता है। न जाने कितने विषयों का ज्ञाता है वह...."

"वह ज्योतिषी भी है और तांत्रिक भी, साहित्यिक और योद्धा भी, तांत्रिक पंडित भी, क्या नहीं है वह? लगता है सारे विषयों को घोलकर पी गया है...."

"जब देखो तब सम्राट से किसी न किसी विषय पर उलझा ही रहता है...."

"यदि शीघ्रता न की गई तो हम लोग पूजन के निश्चित समय तक मंदिर में नहीं पहुँच सकेंगी..." कंचन बोली।

"आषाढ़क से भद्रवती के लिए सूचित करो...."

"भद्रवती तो प्रस्तुत है..."

"तुमने अपनी आँखों देख लिया है?"

"भद्रवती के कपोलों का आलेख देखकर तो मुझे यही विश्वास हुआ ओर आषाढ़क भी गंधर्व-शाला के सम्मुख उपस्थित था...."

"कौशांबी सम्राट को इसकी सूचना शीघ्र दो, स्मरण रहे संन्यासी नहीं सुनने पाये..."

वासवदत्ता ने कञ्चन को सचेत करते कहा।

"राजपुत्री के संकेत और आदेशों का अक्षरशः पालन होगा...."

"एक क्षण का विस्मरण जीवन को भस्मसात् कर सकता है, तुम पिता जी की प्रकृति और निर्मम स्वभाव से परिचित हो...."

"आपके जीवन और भविष्य को दृष्टिकोण में रखकर अवन्तिराज की प्रवृत्तियों में कितना अन्तर आ गया है, इस सम्बन्ध में मैं आपसे अधिक ज्ञान रखती हूँ....समय-समय पर मुझे कई ऐसे आदेश मिले हैं, जिनके चलते ही आप कौशाम्बी-नरेश के समीप आ सकी हैं...."

वासवदत्ता एक ही क्षण में न जाने कितनी बातें सोच गई। कितने ही चित्र उसकी आँखों में बने और मिटे। उसकी आत्मा उसे पुकारती रही। एक साथ कितनी ही समस्याओं ने उलझा दिया, तर्क-जाल में। कितने ही प्रश्न और उत्तर सामने आए, गए। वह ज्यों की त्यों मूर्त्तिवत खड़ी रही। कुछ भी समझ नहीं पायी यह क्या हुआ और क्या हो रहा?

कंचन की पँखुरियों-सी अँगुलियाँ वासवदत्ता के काले कुंतल-जाल

में उलझने लगीं। सरल स्नेह के मादक स्पर्श से व ह सचेत हुई। बोली—

"कंचन विलम्ब न करो। अब मुझे उज्जयिनी के राजभवन की शोभा भी काटने दौड़ी आ रही है। प्राचीर मुझे बन्दी बनाने के लिए चले आ रहे हैं। मेरा जीवन आशंकाओं के साथ अज्ञात आपदाओं से घिरा दीख रहा है...."

"चेतना और साहस से काम लीजिए। आप अपनी सहायता स्वयं कर सकती हैं। आपके आदेशानुसार सारा प्रबंध हो चुका है...."

"पथ में बाधाएँ हैं, विघ्न हैं...."

"विघ्नों और बाधाओं से संघर्ष करनेवाला पुरुष जो साथ है...."

"उज्जयिनी की सैन्य-शक्ति के सम्मुख किसी की अकेली शक्ति क्या कर सकती है ?"

"उज्जयिनी की सीमा पर इतने सैनिक उपस्थित हैं कि कोई भी शक्ति उन्हें पराजित नहीं कर सकती...."

"यह कैसे मालूम तुम्हें....?"

"कारण पूछकर तर्क की आवश्यकता नहीं। बुद्धि से काम लीजिए। मैं अभी जाकर सम्राट उदयन को सूचित करती हूँ।"

कंचन के चरण गंधर्व-शाला की ओर बढ़े। दूसरे ही क्षण वह लौटकर आई और बोली—

"भद्रवती के साथ आषाढ़क प्रस्तुत है, आपकी प्रतीक्षा की जा रही है...."

वासवदत्ता ने अपने शयनागार की सभी सामग्रियों को एक बार करुण-नयनों से निहारा और सुख-दुख के साथी वातायन की ओर देखकर दोनों हाथ जोड़े। जीवन के अगणित क्षण इसी वातायन की सहायता से काटे गए हैं। इसी वातायन से आकर चन्द्रमा मुझे

लोरियाँ सुनाता रहा है, प्रभात की किरणें मुझे आने वाले दिवसों की शुभ सूचना देती रही हैं। कभी-कभी छोटी वस्तु भी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेती हैं। राजपुत्री ने काँपते करों पूजा मंजूषा उठाया और शनै-शनै आगे बढ़ी। सहसा उसकी दृष्टि भद्रवती पर पड़ी। लोचनों में उमड़नेवाले आँसुओं को रोकती हुई बोली—

"आषाढ़क...."

"भद्रवती आपकी सेवा के लिए उपस्थित है...."

वासवदत्ता ने सशंक-नेत्रों से इधर-उधर देखा। न उसकी दृष्टि संन्यासी पर पड़ी और न उदयन पर। आशंकाओं ने आहत कर दिया। किसी तरह भद्रवती पर सवार हुई। कंचन ने संबल दिया। वासवदत्ता ने कंचन के कान में कुछ कहा। कंचन ने धीमे स्वरों में उत्तर दिया—

"सभी मधु से बेसुध हैं....किसी प्रकार के भय की आशंका नहीं। आप अपने को स्थिर रखें...."

"तुम्हारे समीप कौन बैठा है...."राजपुत्री कंचन के कान में मुँह सटाकर बोली।

"संभवतः कोई प्रहरी है...."कंचन ने कहा।

भद्रवती चल पड़ी। आषाढ़क ने अंकुश लगाया। वह चिल्लाती हुई दौड़ी। भद्रवती के पाँवों में जैसे पंख लग गए। वासवदत्ता को दया आ गई। बोल पड़ी—

"आषाढ़क...."

"कोई विशेष आज्ञा राजपुत्री जी...."

"भद्रवती को अंकुश न लगाओ, रो रही है...."

"आदेश के लिए अनुग्रह...."

"जिस गति में जा रही है, वही पर्याप्त है...."

"भद्रवती पर राजपुत्री की विशेष कृपा रहती है।"

वासवदत्ता ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वह आकाश पर विहँसते हुए तारों की ओर अपलक पलकों से देखने लगी। सहसा उसकी दृष्टि कंचन पर जा पड़ी। कंचन की आँखों में आँसू उमड़ आए थे। उससे देखा न गया। वासवदत्ता ने अपना माथा झुका लिया। बहुत कुछ कहना चाहकर भी कुछ न कह सकी। कंचन की अधीरता देखकर वासव दत्ता ने कहा—

'कंचन, जीवन एक धारा है, यौवन एक ज्वार। जीवन की सार्थकता चलते रहने में और यौवन की सार्थकता उत्थान-पतन में।"

"राजपुत्री जी...."

"कञ्चन...."

"राजप्रासाद के प्राचीरों को हम पार कर गए?"

"मुझे इसका स्मरण ही नहीं रहा, आषाढ़क ही कह सकता है, क्यों आषाढ़क हम प्रासाद के प्राचीर से आगे निकल आए?"

"अब हम आशंकाओं से रहित हैं...." सम्राट उदयन ने विश्वास भरे शब्दों में कहा।

"अभी कुछ कहा नहीं जा सकता...." आषाढ़क ने संदेह प्रकट किया।

"अब यदि कोई भी आपत्ति आयेगी उसे देख लूँगा...."

"रात बहुत बीत गई है। भद्रवती के शिथिल चरण ही साक्षी हैं, उन्हें कितना चलना पड़ा है...." आषाढ़क बोला।

वासवदत्ता ने भद्रवती के मस्तक की ओर झुककर देखा तो सिहर उठी। उसके कपोलों से रक्त की धारा बह रही थी फिर भी वायुवेग से भागी जा रही थी मानो राजपुत्री की आज्ञाकारिणी दासी की भाँति सेवा में संलग्न हो। राजपुत्री ने कहा—

"भद्रवती को मैंने बहुत स्नेह दिया है। जब से यह मेरी हुई, कभी अंकुश नहीं लगाने दिया। आज इसके मस्तक पर रक्त की छाया देखकर मेरे प्राण आकुल हो उठे हैं....अब इसे अंकुश न लगाओ आषाढ़क। भद्रवती का शरीर मुझसे भी सुकुमार है...."

"आप इतनी अस्थिर हो उठी हैं...." उदयन ने कहा।

"आप मेरे स्वभाव से परिचित हो चुके हैं। यदि यह अंकुश मेरे माथे पर लगाया गया होता तो आज भद्रवती का माथा छलनी नहीं हो पाता।"

"बन्दी रूप में मैं लाया गया था, वह भी जंगल से पकड़कर। अंकुश का उचित अधिकारी तो मैं था न कि आप...." उदयन ने एक ऐसा सत्य कहा कि वासवदत्ता के सामने कोई तर्क न रहा।

वासवदत्ता उदयन के किसी भी तर्क को माने न माने परन्तु इस तर्क के समक्ष उसका पराजित हो जाना स्वाभाविक हो गया था। वासवदत्ता से रहा न गया। बोली—

"आपका यह तर्क भी अब बासी पड़ गया है, सम्राट...."

"वह तो होना ही था। कोई भी नई घटना जीवन को दूसरी ओर मोड़ देती है। आज की आकस्मिक घटना ने एक नयी गति उत्पन्न कर दी है...."

"नयी गति क्या? यही न कि पहले आप बन्दी बनाकर उज्जयिनी लाये गये थे और आज मैं बन्दी होकर कौशांबी जा रही हूँ...."

"कौशांबी पहुँचकर मैं आपके साथ बिना सैन्य-दल के उज्जयिनी आने को प्रस्तुत रहूँगा...."

"आपके साहस की सदा सराहना करती हूँ...." वासवदत्ता ने कहा।

"विजय आपकी रही...." कंचन ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा।

"इसलिए कि मैं अकेला बन्दी होकर आया था और दो को बन्दी बनाए जा रहा हूँ..."

सम्राट उदयन के परिहास ने आषाढ़क को भी हँसा दिया।

भद्रवती चलती रही। आषाढ़क की कल्पना भी साथ ही चल रही थी। सभी मौन थे। जब तब कंचन वासवदत्ता की ओर देख लेती। उदयन की सशंक आँखों में निर्भयता बोल रही थी। वह मन ही मन कह रहा था—'अब नडागिरि भी भद्रवती को नहीं पा सकती।'

उदयन को यह मौन-वातावरण शूलों की भाँति चुभने लगा। उदयन ने कहा—

"अब कोई भी सम्राट किसी सम्राट को इस प्रकार बन्दी बनाने की नहीं सोचेगा....क्यों कञ्चन....?"

"किसी भी सम्राट को ऐसी अनुकूल परिस्थिति नहीं मिलेगी। दोनों ओर समान रूप से अग्नि-शिखा जल रही थी, जिसका अनुचित लाभ आपने उठाया...." कञ्चन ने उत्तर में कहा।

"बन्दी तो आज भी हूँ। तब राज का बन्दी था, अब रूप का बन्दी हूँ...." उदयन ने कहा।

उदयन का यह संवाद वासवदत्ता के प्राणों में समा गया। वह कुछेक क्षणों तक उत्तर ढूँढ़ती रही। यह ऐसा प्रश्न था, जिसका साकार उत्तर वह स्वयं थी, उसे समझने में विलम्ब न हुआ। फिर भी उसने कहा—

"कुछ ऐसा ही तर्क मेरी ओर से भी उपस्थित किया जा सकता है। आप बन्दी बनाकर उज्जयिनी लाए गए पर मैं बन्दी बनाकर कौशांबी नहीं ले जायी जा सकती थी...."

"जिस रूप में बन्दी बनाकर मैं उज्जयिनी लाया गया था उस रूप में बन्दी होकर आपका कौशांबी जाना समस्त उज्जयिनी को

मिट्टी में गड़ जाने के समान होता। क्या आपके मस्तिष्क में ऐसे विचार नहीं आते?"

"ऐसे अनेको विचार और-समस्याओं के समाधान मेरे पास आते हैं पर आपको देखकर टिक नहीं पाते, कुछ ऐसी ही विवशता है, जिसके लिए लज्जित हो जाती हूँ....मेरे शरीर में अवन्तिराज का ऊष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है, अब भी आपके प्रति प्रतिकार की भावना जाग्रत हो रही है पर मेरी शक्ति पर आपके आकर्षण ने कुछ ऐसा आवरण डाल दिया है, जो हटाए हट नहीं सकता....फिर भी आप पराजित हैं...."

"अवश्य पराजित हूँ परन्तु उज्जयिनी की सैन्य-शक्ति के सम्मुख नहीं, उसके अपूर्व सौन्दर्य और यौवन के आगे...." उदयन ने कहा और वासवदत्ता की ओर देखा।

वासवदत्ता की नारी सुलभ कोमलता लज्जा के आवरण में आरक्त हो उठी। कञ्चन को अपनी भुजाओं में बाँध लिया। उदयन के इस संवाद ने कञ्चन और वासवदत्ता को पराजित कर दिया था। वासवदत्ता ने अपना उत्तरीय सँभाला। उदयन की आँखों में तृष्णा बोल गई। वासवदत्ता ने कहा—

"यह मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है...."

"आपके व्यक्तित्व को मैं उज्जयिनी से कभी पृथक नहीं मानता। इस रहस्य का आरम्भ स्वयं अवन्तिराज के द्वारा हुआ है..."

"यह मेरे जीवन की ऐसी घटना है, जिसे कभी पराजय नहीं कहा जा सकता...."

"क्यों?"

"इसलिए कि नारी, नारी है। नारी कभी अपने सौन्दर्य का पराजय नहीं चाहती। आज मेरा सौन्दर्य विजयी हुआ है और यह

घटना मेरे जीवन का सर्वोदय है....जिसे कभी विस्मरण नहीं किया जा सकता....” वासवदत्ता का नारीत्व बोल रहा था।

“विमुक्ति की यह मादक वेला भी मेरे जीवन का स्वर्णोदय ही है, राजपुत्री जी। ऐसी विमुक्ति जिसके साथ जीवन का मधुर और चिरस्मरणीय बन्धन जुड़ा हो....”

“अभी तक मैं समझ नहीं पायी। ये सारी व्यवस्थायें कैसे हो गई और इतनी शीघ्रता से। आपने इसकी कभी चर्चा भी नहीं की कोई संकेत भी नहीं....” वासवदत्ता बोली।

“जिस दिन मैं बन्दी बनाकर लाया गया उसी दिन से ऐसी चेष्टा करता रहा, प्रयास करता रहा। मनुष्य का कोई भी प्रयास जो प्राणों को अर्पण कर देने की आकांक्षा से होता है, विफल नहीं जा सकता। मुझे सफलता मिली। इसका श्रेय मुझे नहीं, आपको भी है। इस चेष्टा में मैंने अपने को एक अभिनेता के रूप में रखा है। अभिनय का रङ्गमञ्च कुछ अन्य व्यक्तियों ने बनाया....”

“आपका यह उत्तर भी कम रहस्यपूर्ण नहीं। क्या अब भी कोई संशय रह गया है....?”

“जबतक पथिक अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच जाता, उसे संशय तो रहता ही है, यह विषय दूसरा है कि वह आने वाले संघर्षों का उचित समाधान अपने साथ रखता है....”

“इस रहस्य को जानने के लिए मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ, सम्राट....”

“सूर्योदय होने के पूर्व यह रहस्य आपके सम्मुख होगा। आप ही की आँखों से वह आवरण भी हट जायेगा, आप विश्वास रखें...”

“मुझे कई आशंकाओं ने विचलित कर दिया है....”

“जिसके शरीर में उज्जयिनी का रक्त प्रवाहित हो रहा है, जिसके साथ कौशाम्बी की सम्पूर्ण शक्ति हो, वह विचलित हो उठे?

आश्चर्य और विस्मय ही नहीं लज्जा का विषय है। आप धैर्य के साथ स्थिर रहें...."

आठ

सूर्योदय में विलम्ब नहीं। तारे टूट रहे हैं। विहगों का कलरव प्रभात की किरणों को नीड़ों में आने के लिए निमन्त्रण दे रहा है। धरती की अचेतन चेतना सजग हो रही है। कभी-कभी जन-कोलाहल का स्वर भी प्राणों को आशंका में डाल देता है। अन्धकार भागा जा रहा है। दिशाएँ ज्योति-चिन्तन में लीन हैं। उदयन ने आँखें मींचते हुए कहा—

"अब सूर्योदय हो चला है...."

"भद्रवती के चरण शिथिल हो चुके हैं, सम्राट। अब वह चलने से असमर्थ है...."

"विन्ध्या की पर्वतमाला सम्मुख है, अब हम लोग आ चुके हैं...."

युवती के चरण रुके। आषाढ़क ने अंकुश उठाया ही था कि पीछे से वासवदत्ता ने पकड़ लिया। भद्रवती बैठ गई। सभी उतर पड़े। उदयन ने बसन्तक को संकेत किया। बसन्तक द्रुत-गति से आगे बढ़ा।

भद्रवती चिग्घाड़ मार कर लेट गई। आषाढ़क ने कहा—

"दुर्भाग्य....भद्रवती का प्राणान्त हो गया...."

वासवदत्ता की आँखों में पानी आ गया।

"अपने शैशव काल से ही भद्रवती ने मुझे स्नेह दिया।

जीवन के अन्तिम क्षण तक वह मेरा साथ देती रही....” वासवदत्ता ने कहा।

उदयन के चरण आगे बढ़े। वासवदत्ता ने भद्रवती के चरणों का स्पर्श किया और चल पड़ी। वासवदत्ता ने सुना जैसे वह कह रही है—'भद्रवती ने अपने प्राणों का उत्सर्ग आपके लिए किया।' आषाढ़क भद्रवती के समीप बैठ गया। कञ्चन ने उदयन और वासवदत्ता का अनुकरण किया।

विन्ध्य पर्वत के एक शृङ्ग पर सभी विश्राम करने लगे। भिल्लराज पुलिन्दक अपनी समस्त सेना सहित आया और वत्सराज उदयन के चरणों पर झुका। उदयन ने पुलिन्दक का आलिङ्गन किया और कहा—

“आज हमारी मैत्री ने नया रूप ग्रहण किया....”

“ईश्वर के साथ ही धरती और आकाश साक्षी रहेंगे....” पुलिन्दक का सौहार्द्र-भरा स्वर था।

पुलिन्दक की दृष्टि वासवदत्ता और कञ्चनमाला की ओर गई, पुनः वह वत्सराज की ओर देखने लगा।

उदयन ने पुलिन्दक की दृष्टि का आशय समझ लिया। बोला—

“उज्जयिनी की राजपुत्री और साथ में इनकी अन्तरङ्ग सखी कञ्चनमाला....”

पुलिन्दक ने वासवदत्ता के चरणों का स्पर्श किया और कहा—

“पुलिन्दक की हार्दिक शुभ कामना स्वीकार कीजिये, वत्सराज! आपका जीवन सदा सुखी और मंगलमय हो। आपके स्वेद-कणों की जगह हमारा रक्त बहेगा। यदि किसी प्रकार की आशंका आपके प्राणों में हो तो उससे निश्चिन्त रहें....उज्जयिनी क्या कोई

भी बड़ी से बड़ी शक्ति यहाँ आकर पराजित हुए बिना नहीं जा सकती....”

“आपका यह अदम्य उत्साह और अटूट विश्वास कौशाम्बी के लिए सबल संबल होगा। कौशाम्बी की ओर से हार्दिक बधाई....” उदयन ने उत्तर में कहा और चारो ओर दृष्टि दौड़ाते हुए पुनः बोले—

“बसन्तक....”

“बसन्तक नहीं सम्राट....लम्बोदर त्रिपाठी....” कहता हुआ बसन्तक सम्मुख आ रहा।

राजपुत्री ने बसन्तक की ओर देखा। उसके उत्सुक प्राण कौतूहल से भर उठे। सहसा उसकी दृष्टि सम्मुख आते हुए चिर-परिचित संन्यासी पर पड़ी। उसने कहा—

“संन्यासी जी....”

संन्यासी ने बड़े ही नाटकीय ढंग से कहा—

“मैंने बहुत पूर्व कहा था—आपके जीवन में एक नया परिवर्त्तन होने वाला है, हृदय परिवर्त्तन तो हो चुका है। यदि मेरी बातें आपको सत्य लगें, स्वीकारात्मक उत्तर दीजिये....”

“आपका कथन सत्य निकला। इसे मैं स्वीकार करती हूँ....”

“ऐसी ही स्वीकृति अवन्तिराज महासेन ने भी दी थी। मेरे ज्योतिष-शास्त्र ने उन्हें भी विस्मयनविमुग्ध कर दिया....” संन्यासी बोला।

“मगर आप हैं कौन ?”

“मैं नख-शिख सन्यासी हूँ....”

“आप यहाँ कैसे आ गए ?”

“आपका शुभागमन हुआ और इस जीवन परिवर्त्तन के स्वर्ग-

सुअवसर पर आशीर्वाद देने आ गया। संन्यासी का और क्या कर्त्तव्य हो सकता है...."

"लम्बोदर त्रिपाठी की तरह आपका जीवन भी कोई पहेली तो नहीं है ?"

"जीवन की पहेलियों को सुलझाना मेरा काम है। यदि इसे आप पहेली समझें तो उसे भी स्वीकार करता हूँ...."

उदयन संन्यासी और वासवदत्ता के विवाद का आनन्द ले रहा था। कभी-कभी बीच-बीच में टेक दिये जाता था।

"मैं कुछ भी समय नहीं पा रही हूँ...."

"उज्जयिनी में रहकर बहुत अल्पकाल में ही संपूर्ण उज्जयिनी को समझ गया था...."

"उज्जयिनी को आपने क्या समझा था ?"

"यही कि वहाँ के निवासी बहुत सीधे होते हैं...."

"सच...." वासवदत्ता ने विस्मय भरे स्वर में पूछा।

"अवश्य राजपुत्री जी...."

"और आपने उज्जयिनी के विषय में....?"

"आपकी उदारता और सहायता।"

"बस इतना ही।"

"यह कुछ कम है !"

"संन्यासी जी...."

"मेरी दक्षिणा अभी आपके यहाँ शेष है, जिसके लिए मुझे यहाँ तक आना पड़ा...."

"आप जो माँगिए आपके सम्मुख होगा...."

"संयोग आने पर आपसे अवश्य मागूँगा, अभी नहीं...."

"मगर आपने अपना परिचय नहीं दिया ?"

"मैं परिचय दूँ—आपके सम्मुख संन्यासी नहीं कौशांबी के महा-

मंत्री हैं। मेरे पिता के अन्तरंग सखा। ये मेरे पितृ तुल्य हैं...." उदयन ने कहा। वासवदत्ता मंत्री-प्रवर यौगंधरायण के चरणों पर झुक गई।

"आपके सदृश मंत्री पाकर ही कौशांबी, कौशांबी है...." वासवदत्ता ने कहा।

"यौगंधरायण राजपुत्री वासवदत्ता का अभिनन्दन करता है...."

वासवदत्ता ने यौगंधरायण के सम्मान में माथा झुका दिया और अपना उत्तरीय सँभाल कर कंचन उनके पीछे आ रही। उदयन ने कहा—

"आवरण की कोई आवश्यकता नहीं, राजपुत्री जी। मंत्री-प्रवर की कृपा से ही मुझे कभी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं सताती। सौभाग्य से ही ऐसे अभिभावक प्राप्त होते हैं...."

"सम्राट की आज्ञा मिले। मुझे आवश्यक कार्य है...." कहता हुआ यौगंधरायण चल पड़ा सघन-वन की ओर।

"आपके महामान्य ने आपको विमुक्त करने में जो अपना नाटकीय रूप प्रस्तुत किया....आश्चर्य होता है। उज्जयिनी के गुप्तचर भी इस रहस्य को जानने से वंचित रह गए...."

"मंत्री-प्रवर ने तो सत्य ही कहा—उज्जयिनी के निवासी बहुत सीधे होते हैं...." उदयन ने मीठे व्यंग के साथ चुटकी ली।

"आपको सुयोग मिला है, चाहें जो भी कह सकते हैं...."

"कहने के लिए बहुत कुछ कहने का अधिकारी हो चुका हूँ, आपके सहयोग से ही सही। एक प्रकार से आपको भी बन्दी बनाकर ही ले आया हूँ मगर मैं आपको अपने मंत्री के सम्मुख न्याय के लिए उपस्थित नहीं करूँगा...." उदयन ने कहा।

"मेरा जो कुछ होना था, सब हो चुका है, कुछ भी शेष नहीं है।"

"आपका शैशव अभी नहीं गया, राजपुत्री जी...."

"ईश्वर मुझे ऐसी शक्ति दे कि मेरे जीवन के अन्तिम क्षण तक मेरा अबोध और अल्हड़ शैशव निर्दोष बनकर मेरा साथ देता रहे। क्या आप ऐसा नहीं सोचते ?"

"बहुत कुछ सोचने के साथ ही यह भी सोचता हूँ कि मेरा यौवन अक्षय बनकर मेरे ही चरणों का अनुगामी बने। भुजाओं में कृपाण और कंधे पर धनुष-बाण रखने की शक्ति सदा के लिए सुरक्षित रहे....ऐसा हो कहाँ पाता है राजपुत्री जी....?"

"आज मुझे उज्जयिनी का स्मरण आ रहा है। माँ का स्नेह पिता का दुलार पाकर अभी तक जीती रही। माँ को मेरे इस आचरण से कितना कष्ट पहुँचा होगा। पिताजी के प्राणों में कैसी आँधी उठ रही होगी। परिवार के अन्य सदस्यों में न जाने मेरी कैसी चर्चा हो रही होगी...."

"हम दोनों का प्रणय-सम्बन्ध किसे ज्ञात नहीं था ?"

"परन्तु यह किसे ज्ञात था कि वासवदत्ता ऐसा अपराध कर बैठेगी। पिताजी मेरे ऊपर विश्वास किये बैठे होंगे। मैंने अच्छा नहीं किया। यों मुझे इसके लिए कोई पश्चाताप नहीं। मैंने जो कुछ भी किया है, अपने साथ ही आपकी स्थिति और तर्कों को भलीभाँति सोच समझ कर...."

"मानसिक स्थिति या परिस्थिति कोई स्वयं उत्पन्न नहीं करता, हो जाता है। समय इसके लिए दोषी है, वे क्षण इसके लिए अपराधी हैं, जिनमें मनुष्य अपने निजत्व को भी भूल जाता है। पश्चात्ताप कापुरुषों का आभूषण है...."

"दो अपरिचित प्राण मिलकर एक हो जाते हैं। दो पथिकों का लक्ष्य भी एक हो जाता है। मनुष्य के लिए प्रकृति का यह वरदान है। नारी सदा से पुरुष की संगिनि रही है...."

"वही नारी राधा बनी जो सीता थी। वही सावित्री उत्तरा बनी यशोधरा और अहिल्या बनी। नारी का एक ही रूप भिन्न-भिन्न रूपों में सृष्टि के समक्ष आता रहा। नारी सदैव पुरुष के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करती आयी। आपने अपने धर्म की रक्षा को और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं...."

"आप पुरुष हैं, आपका इसका अनुभव होगा—पुरुष अपना एक ही हृदय अनेक नारियों के लिए समर्पित कर सकता है परन्तु नारी के पास एक हृदय होता है, जो वह किसी एक ही पुरुष को दे सकती है और यहीं पर नारी पुरुष से अधिक महान हो जाती है...."

"आपके इस तर्क से कोई सहमत नहीं हो सकता...."

"यह तर्क नहीं, आदि सत्य है। सत्य के समक्ष तर्क बहुत दुर्बल हो जाता है, सम्राट...." वासवदत्ता ने अपने पक्ष का समर्थन किया।

"सत्य इसीलिए सत्य है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ...."

"तर्कों का निर्माण सत्य के आधार पर होता है और सत्य का निर्माण जीवन के आदि-रूप से। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो सृष्टि के आरंभ से चला आता है...."

"आज राजपुत्री जी ने मुझे दर्शन का पाठ पढ़ाया...."

"मनुष्य स्वयं एक दर्शन है, जीवन है...."

"नारी जब अपना हृदय पुरुष को दे बैठती है तो संयोग आने पर अपने प्राणों को देने के लिए भी तत्पर रहती है...."

"आज आपने मुझे...." कहते-कहते रोक लिया अपने को उदयन ने।

वासवदत्ता की आकृति पर हर्ष और विषाद की घनी रेखाएँ खिंच आईं। उसकी आकुल-आँखों में उज्जयिनी की ममता बोलने लगी। सहसा किसी के पदचाप ने उसके विचारों की कड़ी को तोड़ दिया। उदयन ने कहा—

"कौन बसन्तक ?"

"सम्राट...."

"महामंत्री किस ओर गए हैं ?"

"आवश्यकता हो तो शीघ्र सन्देश दूँ...."

"किसी आवश्यक कार्य में व्यस्त हैं ?"

"रुमरण्वान की प्रतीक्षा में जन-पथ की ओर...."

"क्या रुमरण्वान भी आनेवाला है ?"

"आपकी सुरक्षा के लिए कौशांबी से सेना आ रही है, जिसका नेतृत्व रुमरण्वान कर रहे हैं। सैनिकों के लिए खीमे का प्रबंध हो रहा है। महामंत्री इसी कार्य में चिंतित है...."

"हमारी सुरक्षा के लिए पुलिन्दक की सेना ही पर्याप्त थी...."

"अपनी सेना का रहना भी तो आवश्यक था। राजनीति में किसी पर विश्वास नहीं किया जाता...."

"पुलिन्दक बड़ी सहृदयता और सहानुभूति से मिला। मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ हूँ।"

"पूर्वजों के शासन-काल से वह अपना आत्मीय रहा है.... पर्वतीय जातियाँ संस्कार से ही निर्दोष हुआ करती हैं। वे अपनी परंपरागत मर्यादा को सब कुछ हारकर भी स्थिर रखना जानती हैं। पुलिन्दक से हम लोग पूर्व ही मिले थे। आपका बन्दी होना सुनकर वह उज्जयिनी पर आक्रमण करने के लिए आकुल था। बहुत रोकने पर शांत हो सका। पुलिन्दक की सहायता से ही महामंत्री को कुछ ऐसी युक्तियाँ ज्ञात हुईं, जिनके बल पर उज्जयिनी के प्रपंचों का उत्तर दिया जा सका...."

"अभी तक उज्जयिनी का कोई समाचार नहीं मिला, आश्चर्य है...."

"आश्चर्य क्या यह तो स्वाभाविक है...." बसन्तक ने कहा।

"बसन्तक मन्त्री-प्रवर को सूचना दो सम्राट आपका स्मरण कर रहे हैं..."

"महामन्त्री आ रहे हैं, सम्राट...."

"सैनिक-निवास के प्रबन्ध में व्यस्त रहा। इसीलिए विलम्ब हो गया...." यौगन्धरायण ने सम्राट के सम्मुख आकर कहा।

"सैन्य-दल आ गया?"

"सम्राट ..."

"और रुमण्वान?"

"शीघ्र ही आपके समक्ष होगा...."

"भद्रवती का संस्कार कर दिया गया न। मुझे उसका स्मरण ही नहीं रहा...."

"वह सब सम्पन्न किया जा चुका...."

"अभी तक उज्जयिनी का कोई संवाद किसी के द्वारा नहीं मिला न?"

"उज्जयिनी का एक वणिक पुत्र मिला था, जिससे ज्ञात हुआ वहाँ इसके लिए कोई विषाद नहीं है, सुना है—दूत भी शीघ्र ही आने वाला है। रुमण्वान आया...."

"अच्छा, अब आज्ञा की अपेक्षा है...." यौगंधरायण ने कहा और खीमे से बाहर हो गया।

"कौशांबी में कुशल तो है?"

"आपके दर्शन के लिए कौशांबी का कण-कण आकुल हो उठा है। अवन्तिराज ने कौशांबी के साथ प्रपंच करके अच्छा नहीं किया...."

"महा-मंत्री ने भी उचित उत्तर दिया..."

"सम्राट, अब अधिक दिनों तक कौशांबी की जनता प्रतीक्षा नहीं कर सकती...."

"हम शीघ्र ही प्रस्थान करेंगे। आज हमलोग पुलिन्दक के

अतिथि हैं....कल प्रातःकाल विन्ध्यावरी को छोड़ देंगे। राजपुत्री जी..." उदयन ने पुकारा।

"चरणों में शूल चुभ गए हैं, कंचन से उन्हें निकलवा रही हूँ...."

"रुमएवान से मिलिये...."

वासवदत्ता खीमे से बाहर आ गई। उदयन ने कहा—

"यह है, मेरा सखा रुमएवान। आपसे बहुत बार इसकी चर्चा कर चुका हूँ। सैन्य-संचालन इसी के हाथ में है। तुम तो राजपुत्री को पहचान गए होंगे...."

"मेरे साथ ही इसे भी पहचानिये। यह है मेरी अभिन्न-हृदया सखी कंचनमाला जिसे हम प्यार से कंचन भी कहते हैं...."वासवदत्ता ने कहा।

"कितना सुन्दर समन्वय है, रुमएवान मेरा सखा और कंचन आपकी सखी...." उदयन ने कहा।

"मैं एक ही साथ न जाने कितनी कल्पनाएँ कर बैठा सम्राट...."

"पुरुषों को कल्पना करना बहुत आता है...." कहती हुई कंचन भीतर चली गई।

"कौशांबी के लोग क्या कहते हैं, रुमएवान जी...." वासवदत्ता ने जिज्ञासा की।

"कौशांबी का जन-समूह उज्जयिनी से युद्ध करने के लिए आकुल हो रहा था। बड़ी-बड़ी युक्तियों से शान्त किया जा सका अन्यथा उज्जयिनी और कौशांबी का इतिहास कुछ और होता। समर-शास्त्र का ज्ञाता होने पर भी मैं सदैव युद्ध-विरोधी प्रकृति का मनुष्य हूँ। युद्ध की प्रवृत्ति से कभी लाभ नहीं होगा। अंतिम-क्षण तक भी मैं युद्ध के लिए तत्पर नहीं होता परन्तु युद्ध छिड़ जाने पर इंच-मात्र भी पीछे हटना नहीं जानता...."

"विनाश का ही दूसरा नाम युद्ध है...." वासवदत्ता बोली।

"आपके विचारों से मैं बहुत प्रभावित हुआ। कौशांबी की ओर से हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार हो...."

"अभिनन्दन और बधाई अग्रिम प्राप्त कर रही हूँ..."

"ऐसा सौभाग्य, सौभाग्य से ही किसी को प्राप्त होता है, राजपुत्री जी...." रुमण्वान बोला।

"कोशांबी के निवासी बातें बनाने के साथ ही तर्क उपस्थित करना भी जानते हैं...."

"वे तर्क भी शिथिल नहीं हो सकते। ज्ञान से ही तर्क का जन्म होता है। बुद्धि और चेतना उसे आयु दान करती है..."

"रुमण्वान....जाने दो इन विषयों को। ये ऐसे विषय हैं, जिनका कभी अन्त नहीं हो सकता। सैनिक-शिविर की ओर ध्यान रहना आवश्यक है...." उदयन ने कहा। रुमण्वान विदा हुआ सैनिक-शिविर की ओर।

"आप कैसा अनुभव कर रही हैं, राजपुत्री जी। कुसुमों की शय्या पर पलने वाले प्राणों को मेरे ही चलते इतना कष्ट उठाना पड़ा...."

"आपको देखकर मुझे किसी प्रकार का कष्ट सहन करने में आनन्द ही आता है। उज्जयिनी को लेकर मुझे चिन्ता होने लगी है...."

"विश्वस्त-सूत्र से ज्ञात हुआ है, वहाँ कुशल है। आपके इस आचरण के लिए कोई विषाद नहीं। सुना है, राजदूत आने वाला है..."

"राजदूत के आने का अर्थ युद्ध का सन्देश ही है...."

"उज्जयिनी का राजदूत युद्ध-सन्देश लेकर नहीं प्रण-संवाद लेकर आया करते हैं। यह मुझे विश्वास हो चुका है..."

"ईश्वर हमारी सहायता करे..."

नौ

"प्रस्थान का मुहूर्त हो चुका है....मंत्री प्रवर...."

"उज्जयिनी का दूत आ चुका है, वह आपसे कुछ गोपनीय संवाद निवेदन करना चाहता है...."

"उपस्थित किया जाय...."

"उज्जयिनी की ओर से कौशांबी-सम्राट अभिनन्दन स्वीकार करें...." राजदूत ने सम्राट-शिविर में प्रवेश करते हुए कहा।

"उदयन उज्जयिनी को अपना निजत्व दान कर चुका है..." सम्राट उदयन ने उत्तर में कहा।

"विशेष आपकी कृपा है..."

"यात्रा में कोई कष्ट तो नहीं हुआ?'

"कोई कष्ट नहीं...."

"अवन्तिराज सकुशल तो हैं...."

"सब कुशल है...'

"आप भी कौशांबी चलिए...."

"अवन्तिराज की आज्ञा के बिना कहीं भी जाना मेरे आचरणों के विरुद्ध है...."

"कैसे आगमन हुआ?"

"आपके समक्ष अवन्तिराज की समस्याएँ प्रस्तुत करने के लिए सेवा में उपस्थित हूँ, यहाँ कोई अन्य तो नहीं है...."

"कोई नहीं...आप निर्भय होकर, जो कुछ कहना चाहें, कह सकते हैं...."

"राजपुत्री कहाँ हैं ?"

"शिविर के भीतर। यदि आप चाहें तो वह आपके सम्मुख आ सकती हैं....मेरी ओर से आप किसी प्रकार की आशंका की संभावना न करें। कौशांबी के निवासी प्रपंचों का उत्तर प्रपंचों से देना जानते हैं, प्रपंच और कपट नहीं...."

"सम्राट की यह भी आज्ञा है कि मैं एक बार राजपुत्री को अपनी आँखों देखता आऊँ...."

"कंचन....राजपुत्री को उज्जयिनी का राजदूत स्मरण..." दूसरे क्षण वासवदत्ता सम्राट के शिविर में प्रविष्ट हुई। राजदूत ने राजपुत्री का अभिवादन करते हुए कहा—

"अवन्तिराज ने आपका कुशल पूछा...."

"मुझे कोई कष्ट नहीं। मेरे चलते पिता जी को जो कष्ट हुआ उसके लिए मुझे बहुत पश्चाताप है, परन्तु मेरे पास कोई अन्य संबल नहीं था...." कहती हुई वासवदत्ता की आँखें भर आईं।

"प्रत्येक व्यक्ति को अपने पथ-निर्माण का समान अधिकार है..."

"मैंने उस अधिकार का दुरुपयोग किया..."

"अवन्तिराज को इसके लिए कोई विषाद नहीं, मैं आपको विश्वास दिला रहा हूँ..."

वासवदत्ता के लोचन बन्द हो गए। अश्रु-धारा अविराम-गति से प्रवाहित होती रही। कंचन ने वासवदत्ता की आँखें पोंछ कर कहा—

"इस आकस्मिक घटना से उज्जयिनी आन्दोलित हो उठी होगी...."

"अवश्य...." राजदूत बोला।

"सम्राट क्या सोच रहे होंगे....?"

"सम्राट अब यह सोच रहे हैं कि यह शुभकार्य विधिवत् सम्पन्न हो, इसकी उचित व्यवस्था की जाय। राजकुमार गोपालक सैन्य-दल के साथ आक्रमण करने आ रहे थे, स्वयं सम्राट ने आदेश देकर रोक दिया...."

"मैं इसे अवन्तिराज की कृपा नहीं मानता। यदि उन्होंने कौशाम्बी पर भी आक्रमण कर दिया होता तो उनकी कीर्तिलता यशस्विनी हो जाती। उन्होंने मुझे बन्दी बनाने में प्रपञ्चों की सहायता ली। इसमें मेरा दोष नहीं....इस घटना के लिए मुझे दुःख है, पश्चाताप नहीं...." उदयन ने कहा।

"राजकुमार गोपालक कौशाम्बी जायेंगे। मेरा कार्य समाप्त हुआ। अब मुझे आज्ञा मिले। मेरी प्रतीक्षा में अवन्तिराज अत्यन्त उत्सुक हो रहे होंगे..." कहता हुआ राज दूत विदा हुआ।

वासवदत्ता की चिन्ताएँ दूर हुईं। उदयन ने वासवदत्ता के काले-कुंतल-जाल में अपनी अँगुलियाँ उलझा दी। उसकी बन्द-पलकों में सपने जगने लगे। महामन्त्री ने बाहर से कहा—

"सैनिक प्रस्थान कर चुके...."

"मुझमें कोई विलम्ब नहीं...."उदयन ने कहा।

"पुलिन्दक आपका दर्शन चाहते हैं..." कहता हुआ यौगन्धरायण भिल्लराज पुलिन्दक के साथ प्रविष्ट हुआ।

"पुलिन्दक वत्सराज की कुछ भी सेवा न कर सका...."

"सौहार्द्र और मैत्री की भावना एक ऐसी सेवा है, जिसका कोई मूल्य नहीं हो सकता। हमारा बन्धुत्व स्थिर रहे, शुभ कामना लिए कौशाम्बी जा रहा हूँ...." उदयन विन्ध्यावटी से अपने दल-बल के साथ विदा हुआ। दिशाएँ जय-ध्वनि से मुखरित हो उठीं।

× × × ×

कुमार गोपालक कौशांबी पहुँचा। वासवदत्ता के पाणिग्रहण संस्कार की तिथि निश्चित हुई। अग्नि-प्रदक्षिणा के साथ उदयन ने वासवदत्ता का पल्लव सदृश पाणि ग्रहण किया। उदयन के कोमल-कर-स्पर्श से वासवदत्ता रोमांचित हो उठी। उदयन के परिणय के के समय अन्य राजा महाराजा भी उपस्थिति थे। अग्नि के दाह से वासवदत्ता की आँखों में अरुण-आभा आलोकित हो उठी जैसे मधु-अपना समस्त माधुर्य लिए हो।

उदयन और वासवदत्ता सर्व प्रथम दर्शकों की आँखों में प्रविष्ट हुए। पुन राजभवन में वस्तुतः आज वत्सराज को राजस्व की प्राप्ति हुई। उदयन ने गोपालक और पुलिन्दक का यथोचित सम्मान किया। यौगंधरायण, रुमण्वान और बसन्तक ने आगत अतिथियों की राजकीय अभ्यर्थना की। कुमार गोपालक, उदयन की सहानुभूति और कौशांबी की सहृदयता लिए उज्जयिनी लौटा।

उदयन और वासवदत्ता का परिचय दिनोदिन क्रमानुसार बढ़ने लगा। प्रेम का पल्लव नित-नित नवीनता की ओर अग्रसर होने लगा। उदयन का स्वभाव आरंभ से ही चंचल था। उदयन के जीवन में वासवदत्ता के प्रगाढ़ प्रेम के पूर्व ही प्रेम ने अपना घर बना लिया और वह 'विरचिका' नामक परिचारिका के माध्यम से। शनै-शनै उदयन का यह रहस्य भी प्रकट होने लगा।

एक दिन वासवदत्ता के साथ होते हुए प्रेमालाप के क्रम में ही उदयन ने विरचिका की चर्चा कर दी, जिसके चलते बसन्तक को अपनी कला-कौशल के अभिनय द्वारा वासवदत्ता को संतुष्ट करना पड़ा फिर भी एक अँदेसा उसके अन्तर में शेष रह ही गया।

उदयन का दैनिक जीवन वासवदत्ता के साथ बीतने लगा। शासन का भार यौगंधरायण और रुमण्वान पर आ पड़ा। यौगंधरायण के सम्मुख राज्य विस्तार की आकांक्षा जाग रही थी। रह-

रहकर उसकी दृष्टि मगध पर जा टिकती। मगध को लेकर कभी-कभी आशंकाओं की कल्पना भी कर बैठता।

यौगंधरायण का आवागमन मगध से कुछ आवश्यक राजकीय कार्यों को लेकर होता रहा। मगध की राजकुमारी पद्मावती को यौगंधरायण ने देखा था। वासवदत्ता सम्राट उदयन के जीवन में, एक आकस्मिक घटना बन कर अवतीर्ण हो गई। यौगंधरायण की इच्छा पद्मावती को राजमहिषी बनाने की थी। यौगंधरायण नीति-कुशल और अत्यन्त चतुर था। वह प्रयास करते हुए जीना और चेष्टा करते हुए मरना जानता था। रुमण्वान पर उदयन की विशेष कृपा रहती थी, इससे वह परिचित था। एक दिन यौयंधरायण ने रुएमण्वान को अपने प्रकोष्ठ में बुलाकर कहा—

"कौशांबी के राज्य विस्तार में ही हमारा अभ्युदय निहित है...."

"इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता...." रुमण्वान ने उत्तर दिया।

"मगध की ओर से सदैव आक्रमण की आशंका बनी रहती है, आक्रमण होता भी रहता है...."

"इसके लिए सैन्य-सङ्गठन अनिवार्य है...."

"सैनिक-सङ्गठन मात्र से ही यह अभीष्ट कदापि सिद्ध नहीं हो सकता...."

"मगधराज दर्शक से तो अपना मैत्री-भाव है..."

"राजनीति में मित्रता का कहीं स्थान नहीं। यह मैं जानता हूँ कि मगधराज दर्शक सम्राट का अन्तरंग सहपाठी और सखा रहा है.... मगर तुम महर्षि जमदग्नि के आश्रम की बातें भूल जाओ...."

"क्या मनुष्य किसी को इतनी शीघ्रता के साथ विस्मृत कर सकता है ?"

"साम्राज्य-विस्तार की लिप्सा चक्रवर्ती से चक्रवर्ती सम्राटों को

भी विचलित कर देती है। मगधराज दर्शक कोई देवता नहीं, मनुष्य ही तो हैं...."

"दर्शक सम्राट उदयन के अन्तरङ्ग सखा के रूप में रहे हैं। मैं दर्शक के चरित्र और स्वभाव से पूर्णतया परिचित हूँ..."

"आयु के अनुसार ही अनुभव के चरण चला करते हैं। मेरे माथे की श्वेत-केश-राशि साधना का प्रतीक है...."

"आपके अनुभवों को भला कौन अस्वीकार कर सकता है। आपके प्रत्येक चरण सोच-समझकर ही उटते हैं। आपके कहने का तात्पर्य क्या है ?"

"मेरा तात्पर्य है, मगध की सहानुभूति प्राप्त करना...."

"कैसी सहानुभूति ? वह किस रूप में ग्रहण की जा सकती है...."

"शारीरिक सम्बन्ध से...."

"अपने विचारों को और स्पष्ट किया जाय, मन्त्री-प्रवर...."

"मेरा लक्ष्य मगध की राजपुत्री पद्मावती की ओर है। पद्मावती से सम्राट का परिणय-सम्बन्ध स्थापित कराया जाय...."

"सम्भव नहीं दीखता...." रुमण्वान ने असमर्थता प्रकट की।

"संसार में कुछ भी असम्भव नहीं...."

"राजमहिषी वासवदत्ता पर जो अनुराग सम्राट का है, उसे दृष्टि में रखते हुए, यह चर्चा निरर्थक-सी लगती है...."

"मेरे पास कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनके बल पर असम्भव को सम्भव करके दिखा सकता हूँ, तुम मेरा समर्थन करो। बसन्तक को इसकी पश्चात् दे दी जायेगी। मुझे उसकी ओर से कोई चिन्ता नहीं सूचना है...." यौगन्धरायण ने विश्वास के साथ कहा।

"क्या राजमहिषी वासवदत्ता को इससे अनभिज्ञ रखा जायेगा ?"

"कदापि नहीं...."

"वासदत्ता को अन्धकार में रखकर यह कभी सम्भव नहीं हो सकता...."

"आश्चर्य है...."

"तुम बसन्तक को इसकी सूचना दो, मैं वासवदत्ता की स्वीकृति लेता हूँ...."

"यदि राजमहिषी की स्वीकृति न मिली तो...."

"कोई कारण नहीं...."

"........"

"यदि ऐसा हो भी जाय तो मैं दूसरी युक्ति निकालूँगा...."

रुमण्वान बसन्तक के समीप गया और यौगन्धरायण वासवदत्ता के प्रकोष्ठ में। यौगन्धरायण को देखते ही परिचारिका ने अभिवादन किया। बोली—

"मन्त्री-प्रवर ने बहुत कष्ट उठाया...."

"राजमहिषी का दर्शन कई दिनों से नहीं हो सका...."

"अभी जाकर व्यवस्था करती हूँ..." कहती हुई परिचारिका राजमहिषी के प्रकोष्ठ में गई और दूसरे ही क्षण लौटकर बोली—

"राजमहिषी की आज्ञा है...."

"आयुष्मान वासवदत्ते!"

"मन्त्री-प्रवर, मेरा प्रणाम स्वीकार करें...."

"आपके सौभाग्य के साथ ही कौशाम्बी के सौभाग्य का दीपक जलता है, राजमहिषी...."

"कौशाम्बी को आप जैसा मन्त्री मिला है, उसके स्वाभिमान का दीपक कभी मद्धिम हो सकता है?"

"आस-पास के राष्ट्रों का आक्रमण होने लगा है। कई आशङ्काएँ प्राणों को सिहराने लगी हैं। मैं आपसे अपनी दक्षिणा माँगने आया हूँ..."

"आप जो माँगिए मैं देने को प्रस्तुत हूँ...संपूर्ण कौशाम्बी आपकी है...."

"मुझे कौशाम्बी नहीं, कौशाम्बी की सीमा का विस्तार चाहिए, शक्ति चाहिए...."

"मेरा जो कुछ है, मेरा नहीं, कौशाम्बी का है। कौशाम्बी के लिए अपने शरीर का रक्त-माँस ही नहीं प्राण तक दे सकती हूँ..."

"मुझे आपका प्राण नहीं, अपनी दक्षिणा-मात्र चाहिए...."

"आपका मंतव्य क्या है ?"

"वचन दीजिये...."

"वह तो दिया...."

"मगधराज दर्शक को आप जानती हैं, कौशाम्बी की शक्ति की श्री-वृद्धि हो चली है। शक्ति के साथ ही सम्पदा की श्री-वृद्धि भी हो रही है। आस-पास के राष्ट्र अब ईर्ष्या की अग्नि में जलने लगे हैं...."

"इसके लिए सैनिक-सङ्गठन की नितान्त आवश्यकता है...."

"सैनिक-संगठन से ही सब-कुछ सम्भव नहीं हो सकता। कुछ पारस्परिक सम्बन्धों का प्रभाव भी पड़ता है...."

"पारस्परिक सम्बन्ध से मंत्री-प्रवर का क्या अभिप्राय है ? कृपया इस विषय को स्पष्ट करने की चेष्टा करें। मेरा आग्रह है..."

"आपके हृदय पर इसका क्या प्रभाव पड़ा है, इसे जानने को उत्सुक हो उठा हूँ...."

"मुझे तो ऐसा लगा, जैसे कई अज्ञात आशंकाओं ने एक ही साथ आक्रमण कर दिया है, फिर भी मैं इसके लिए चिंतित नहीं हूँ..."

"मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी...."

वासवदत्ता के प्राणों में कोलाहल छा गया। वह उदयन पर

अपना एक छत्र अधिकार समझती रही। विरचिका ने उसके मस्तिष्क को एक क्षण के लिए आन्दोलित कर दिया था और अब इस दूसरी प्रतिक्रिया ने कुछ नई परिस्थिति उत्पन्न कर दी। वासवदत्ता की दृष्टि शून्य दिशाओं की ओर जा लगी। आकाश के चित्र-पट पर खिंचती-मिटती टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं को निर्निमेष नयनों से निहारने लगी। वासवदत्ता ने अपने को सँभालते हुए कहा—

"परन्तु आपसे मुझे ऐसी आशा न थी, मंत्री-प्रवर..."

"सम्राट उदयन को इन्हीं हाथों ने पाल-पोसकर बड़ा किया है। उदयन मेरे लिए उतने ही प्रिय हैं, जितना किसी माँ-बाप के लिए अपनी संतान। कौशांबी के राज्य-विस्तार, शासन सम्बन्धी समस्याओं के साथ सदैव अपने प्राणों को मृत्यु के सम्मुख रखा है। उदयन के भविष्य के साथ समस्त कौशांबी का भाग्य जी रहा है। आपको यदि ऐसी आशंका है कि मैं कौशांबी के लिए कोई अहित सोच रहा हूँ तो आप मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकती हैं। आप उसके लिए पूर्णतया स्वतंत्र हैं...."

"आपके प्रति ऐसा कैसे सोचा जा सकता है ? कौशांबी आपकी है और आप पर कौशांबी का अधिकार है...कौशांबी और उसके सम्राट के भविष्य के लिए अपने प्राणों को अर्पित कर सकती हूँ...."

"मगध से हमारी मैत्री है परन्तु राजनीति में मैत्री शब्द का प्रयोग बहुत शिथिलता के साथ किया जाता है। कभी-कभी मगध के सैनिक सीमा पर आक्रमण भी कर बैठते हैं। पड़ोस का पांचाल-नरेश भी अनिष्टकारी भावनाओं से ही मेरी ओर देखा करता है..."

"पांचाल-नरेश अनन्तवीर्य...." वासवदत्ता ने आश्चर्य प्रकट किया।

"अनन्तवीर्य ही।"

"वह भी तो सम्राट का सहपाठी ही रहा है। सम्राट तो उसकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे...?"

"सम्राट का हृदय ही ऐसा है...." यौगंधरायण ने कहा।

"आपने क्या निर्णय किया है?"

"मेरा कुछ ऐसा निर्णय है, जिसे सुनकर कोई भी नारी सिहर सकती है। कुछ दिन पूर्व पांचाल-नरेश अनन्तवीर्य भ्रमण के लिए मगध गया था। मगध की राजकुमारी पद्मावती को मंदिर से लौटते देखकर वह आसक्त हो गया और उसने दर्शक के सम्मुख अपने विवाह का प्रस्ताव रख दिया...."

"छि....छि....वह कितना अधम है...." वासवदत्ता ने घृणा भरे स्वर में कहा।

"बहुत दिन पूर्व ही मगध से यह प्रस्ताव कौशांबी आया था पर कई कारणों से ऐसा न हो सका। इसी बीच सम्राट के जीवन में उज्जयिनी आ गई। दर्शक के मन में इसके लिए अब भी क्षोभ है। यह मैं भलीभाँति जानता हूँ—सम्राट इसके लिए कदाचित सहमत न होंगे परन्तु मगध से सम्बन्ध स्थापित करना अनिवार्य है।"

"यह सम्भव कैसे हो सकता है?"

"आप विश्वास दें तो असंभव को भी संभव किया जा सकता है?"

"मेरा विश्वास तो आपके साथ है..." .

"सम्राट को इसकी सूचना न मिले। यह बात रुमण्वान, बसन्तक के साथ मेरे आपके अतिरिक्त अन्य किसी पर प्रकट न हो। पद्मावती के हृदय को मैंने टटोलकर देख लिया है, वह सम्राट उदयन को अपने जीवन में रखती है। उसने ऐसा निर्णय भी किया है।"

"तो मुझे इसमें क्या करना होगा...."

"आपको इसमें अभिनय करना होगा और मैं कुछ ऐसा आक-

स्मिक वातावरण प्रस्तुत कर दूँगा कि सब कुछ सम्भव हो जायेगा...”

“यदि यह रहस्य प्रकट हो गया तो ?”

“तो मैं आपकी दुर्बलता समझूँगा....”

“यह मेरी अग्नि-परीक्षा है, मंत्री-प्रवर....”

“आपको कोई कष्ट न होगा। यदि हो भी तो, उसे सहन करने के लिए साहस का संचय करना चाहिए। मैंने बसन्तक को अपने पक्ष में कर लिया है....”

“रुमण्वान को पक्ष में करना कठिन है....”

“रुमण्वान कौशांबी की राजनैतिक स्थिति को अच्छी तरह जानता है। वह कभी असहमत नहीं हो सकता....”

वासवदत्ता के समक्ष उदयन का चित्र उतर आया। एक ही क्षण में कितनी ही समस्याएँ उसके सम्मुख आईं और गईं। वासवदत्ता ने यौगंधरायण की मौन-आकृति की ओर देखा। बोली—

“आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहें, मंत्री-प्रवर....”

दस

“लावाणक तो अत्यन्त रमणीय स्थान है ?”

“सम्राट की मनोभावनाओं को मैं शैशवकाल से ही जानता हूँ। इसकी शोभा तो अपूर्व है ही, आखेट के लिए इतनी उपयुक्त और विलक्षण भूमि है कि जिसके लिए मगधराज....”

“क्या कहा मगधराज....?”

“मगधराज की लिप्सा भी बढ़ी जा रही है। यदा-कदा मगध

के सैनिक लावाणक पर आक्रमण भी कर देते हैं। यहीं से मगध की सीमा प्रारम्भ होती है...."

"आज हमारे शिविर का स्थापन यहीं होगा। क्यों वासवदत्ता ?"

"इससे अच्छा और मनोरम स्थान कहाँ मिलेगा सम्राट ?" अपनी हार्दिक सहमति प्रकट करते हुए वासवदत्ता ने उदयन का समर्थन किया।

"लावाणक के शिविर-स्थापन से लावाणक की रक्षा भी हो जायेगी और मगध के आक्रमणों की शङ्का भी जाती रहेगी। यह स्थान अधिक दिनों तक उपेक्षित रह जाने के कारण इस स्थिति को प्राप्त कर चुका है..."

"आपके विचारों से मुझे सहमति है...." उदयन ने कहा।

लावाणक में शिविर की व्यवस्था होने लगी। देखते-देखते लावाणक की शोभा बढ़ गई। उदयन की घोषवती वीणा की मादक स्वर-लहरी से वन-प्रान्तर के पत्ते-पत्ते थिरक उठे, दिशाएँ मन्त्र-मुग्ध हो उठीं।

उदयन का अधिक समय आखेट में बीतने लगा। आखेट में कभी रुमण्वान साथ रहता, कभी बसन्तक। यौगन्धरायण शिविर के प्रबन्ध में सदा व्यस्त रहा करते।

एक दिन उदयन रुमण्वान को साथ लेकर आखेट के लिए निकला। संध्या शनै-शनै यौवन को प्राप्त कर रही थी। सिंह भागा जा रहा था। उदयन के बाण उसका पीछा करते जा रहे थे। सहसा उदयन का बायाँ अङ्ग फड़क उठा। उदयन ने पीछे मुड़कर देखा—रुमण्वान बहुत दूर पीछे रह गया था। उदयन के चरण रुक-से गए मगर बाण चलते रहे उधर सिंह पछाड़ खाकर गिरा। उदयन ने पुकारा—

"रुमण्वान...."

"मेरे चरणों में शूल-चुभ गए सम्राट। चला नहीं जाता। बहुत कष्ट हो रहा है...." रुमण्वान ने उत्तर में कहा।

उदयन रुमरावान की ओर लौट पड़ा। समीप जाकर बोला—

"ला तो देखूँ...."

"बड़ी पीड़ा है राजन्। ऐसी मर्मान्तिक पीड़ा मुझे कभी नहीं हुई...."

"शूल से ही शूल निकलते हैं...." कहता हुआ उदयन बबूल के पास गया और एक नुकीला शूल लिए आया।

"आओ निकाल दूँ...यह लो....अब तो पीड़ा नहीं है?" उदयन ने जिज्ञासा की।

"बहुत कष्ट था राजन्...."

"निर्जन बन का पथ हो ऐसा होता है। सँभालकर चरण नहीं रखने से शूल चुभ जाते हैं। आज मेरा बायाँ अङ्ग फड़क रहा है, कोई अनिष्ट अवश्यंभावी है...."

"व्यर्थ की बातों पर आपकी धारणा बन जाती है...."

"रुमण्वान विन्ध्यावटी में मेरा बायाँ अङ्ग फड़का था, जिससे मुझे होने वाले अनिष्ट की सूचना मिली और बन्दी बनाया गया...."

"यहाँ किस अनिष्ट की आशंका है। बन्दी होना तो आपके लिए अशुभ नहीं हुआ। अकेले बन्दी हुए और दो को बन्दी बनाकर कौशांबी ले आए। मुझे तो कोई बन्दी ही नहीं बनाता...."

"चलो लौट चलें...."

"आज बहुत विलम्ब हो गया...."

उदयन और रुमण्वान लौट चले। अकस्मात् जन-कोलाहल सुन पड़ा। उदयन ने कहा—

"यह कैसा कोलाहल है, रुमण्वान?"

"दिन भर कोलाहल पीकर आकाश मौन होने लगता है तो

कुछ ऐसा ही वातावरण उपस्थित हो जाता है। इसमें विस्मय की क्या बात ?"

"रुमण्वान उधर देखो प्रकाश....आग...."

"वह कैसा बन होगा, जिसमें अग्नि का प्रकोप नहीं हो। वन में तो स्वतः अग्नि-काण्ड हो जाता है पवन के हिलकोरों से जब दो शाखाएँ परस्पर रगड़ खाती है तो अग्नि की सृष्टि हो जाती है...."

"नहीं....नहीं....इस कोलाहल के पीछे मुझे अनिष्ट की सम्भावना हो रही है। ईश्वर करे मेरी यह कल्पना सत्य का आकार न धारण करे नहीं....नहीं....आग अपने ही शिविर में वह देखो अग्नि की शिखा आकाश को छूने लगी है। वन-प्रांतर पकाश से भर उठा है.... चलो रुमण्वान...." कहता हुआ उदयन शिविर की ओर दौड़ पड़ा। रुमण्वान ने तीव्रगति से उदयन का अनुसरण किया। उदयन ने शिविर के समीप जाकर देखा—सम्पूर्ण शिविर धू-धू कर जल रहा था। सैनिकों में हाहाकार मच गया था। एक सैनिक ने आकर कहा—

"शिविर में स्वतः अग्नि-प्रकोप हो गया सम्राट। एक ही क्षण में शिविर जल उठा। हमारी एक भी चेष्टा सफल न हो सकी। यह अग्नि-काण्ड कौशाम्बी के लिए बहुत बड़ा दुर्भाग्य सिद्ध हुआ। राजमहिषी, महामन्त्री और बसन्तक के साथ अन्य कई सैनिकों की रक्षा न हो सकी। समय ही नहीं मिल सका..."

उदयन मौन हो गया। वह कुछ न बोल सका। उसकी आँखों में अग्नि-शिखा जल-जल उठी। उसने रुमण्वान की ओर सजल-नयनों से देखा। रुमण्वान मूर्त्तिवत् खड़ा रहा। उदयन के शरीर का रक्त पानी हो गया। उसके समक्ष उज्जयिनी कपालिनी बनकर नृत्य कर उठी। वह अपराधी की भाँति खड़ा-खड़ा सर्पिणी-सी. उठती हुई अग्नि-शिखाओं को देखता रहा। प्रत्येक शिखाएँ वासवदत्ता का चित्र बनाती हुई आकाश की ओर जा रही थीं। उदयन ने कहा—

"रुमण्वान....रुमण्वान....वह देखो वासवदत्ता....वासवदत्ता आकाश की ओर....वही है...."

उदयन के चरण हिले। रुमण्वान ने उदयन को अपनी भुजाओं का सम्बल देते हुए कहा—

"अधीर न हो राजन..."

"रुमण्वान...." उदयन की आँखों से युग-युग से संचित स्नेह की धारा निकल पड़ी।

"शरीर नश्वर होता है। मनुष्य का भाग्य जहाँ चाहता है, ले जाता है...."

उदयन को अपनी माँ का स्मरण आ गया। उसने मन-ही-मन कहा—'माँ ने भी कुछ ऐसा ही कहा था।'

"मगर मैं वासवदत्ता के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता .. एक क्षण भी नहीं...."

"आत्मा ही अमर होती है....समझिए कि वासवदत्ता आपके जीवन में आयी नहीं। वह एक सपना थी जो क्षण भर के लिए आँखों को बहला गयी...."

"जिसने अपनी कोमल अँगुलियों में मेरे अन्तर-पट पर अपना चित्र उतार दिया है, उसे कैसे भुला सकूँगा। रेखाएँ मेरी ओर दौड़ी आ रही हैं....उसने मुझे जीवन दिया था और मैंने उसे मरण दिया। मेरे लिए उसने प्राणों की चिन्ता नहीं की। अपमान और लाञ्छन के स्वाद लिए। सारी उज्जयिनी की छवि-सम्पदा को तृण के समान समझा। आज वही त्याग और क्षमा की मूर्त्ति भस्मसात हो गई...."

"जीवन के चरण गतिशील होते हैं, राजन्....मृत्यु एक ऐसा सत्य है, जिस पर कभी अविश्वास नहीं किया जा सकता।"

"मगर इस अघटन घटना का समाधान?"

"पुनः मूर्त्ति की स्थापना...."

"मेरा शरीर आज शून्य-सा हो गया है। वासवदत्ता मेरी, संज्ञा बन गई थी। मैं एक ऐसा वाक्य रह गया हूँ, जिसकी संज्ञा लुप्त हो गई....अब मेरा कोई अर्थ नहीं, कोई प्रयोजन नहीं...."

"पुरुष ऐसे नहीं अधीर होते राजन्...."

× × × ×

"राजपुत्री जी...."

"जिसे जो अभीष्ट हो, उसे स्वीकार करने के लिए, मेरी ओर से निवेदन करो..."

मधुरिका ने राजकुमारी पद्मावती की ओर आशान्वित आँखों से निहारा और तपस्वियों को लक्ष्य करते हुए कहा—

"मगध राजपुत्री श्रद्धा और भक्ति के साथ आपकी अभीष्ट सिद्धि के लिए सादर निमन्त्रण देती है...."

"राजपुत्री जी....मैं अभ्यागत हूँ। यह मेरी बहिन है। इसका पति प्रवासी हो गया है। मुझे विश्वास है, कुछ काल तक आपके द्वारा इसका परिपालन हो सकेगा...."

"इस ब्राह्मण तपस्वी का अभीष्ट तो...." मधुकरिका ने अपने को रोक लिए।

"आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। आज से यह मेरी आत्मीय हुई...आओ मेरे समीप....तुम्हारा शुभनाम?"

"अवन्तिका...."

"बहुत सुन्दर नाम है तुम्हारा बिलकुल तुम्हारे अनुरूप.... मधुकरिका तनिक बाहर देख तो कोई ब्रह्मचारी कुछ याचना करना चाहता है?"

मधुकरिका ने बाहर आकर ब्रह्मचारी से पूछा—

"कहिए आपकी क्या सेवा की जाय....?"

"अपराध हो गया....यहाँ तो स्त्रियाँ हैं...."

"आप स्वाधीनतापूर्वक विराजिए। तपोवन का आश्रम तो सभी के लिए है। आप हमारा अतिथ्य स्वीकार करें...."

"आपका निवास स्थान कहाँ है?" तपस्वी ने पूछा।

"मेरा निवास-स्थान राजगृह है। वत्स-प्रदेश के लावणक नामक ग्राम में वेदों का विशेष अध्ययन करता था। वहाँ एक करुण घटना हो गई। वत्सराज उदयन का शिविर स्थापित हुआ था। वत्सराज आखेट में गए थे कि शिविर में अग्नि-काण्ड हो गया। राजमहिषी वासवदत्ता भी जल गई। राजमहिषी की रक्षा के लिए राजमन्त्री यौगन्धरायण भी उसी अग्नि में हवन हो गया। वत्सराज जब आखेट से लौटे वे उसी प्रज्ज्वलित अग्नि में अपने को समाहित करने के लिए बढ़े। मन्त्रियों ने बड़ी चेष्टा के साथ रोका। राजमहिषी के वियोग में वे मूर्च्छित हो रहे। धीरे-धीरे राजा को चेतना आयी। रुमण्वान नामक मन्त्री की दशा चिन्तनीय हो गई है।"

"राजकुमारी जी, आर्या की आँखों में आँसू उमड़ आए...." मधुकरिका ने अवन्तिका की ओर संकेत करते हुए कहा।

"अवन्तिका का हृदय बहुत कोमल है। कोई भी दुखद घटना इसे कातर बना देती है...." ब्राह्मण तपस्वी ने कहा।

"संतोष विषय का है, सम्राट की रक्षा हो सकी...." पद्मावती बोली।

"निश्चय ही सम्राट उदयन बहुत गुणवान और सत्य व्रती है...." तपस्वी ने कहा और पद्मावती की आकृति पर सहसा खिंच आयी रेखाओं का मनन करने लगा।

"विश्राम कीजिये, ब्रह्मचारी जी...."

"राजकुमारी की आज्ञा हो तो विदा होऊँ...."तपस्वी, ने अनुनय किया।

"आर्य की अनुपस्थिति में अवन्तिका उत्कंठित होंगी...."

"जिसे आपकी कृपा मिले, उसके चित्र में किसी प्रकार की मलीनता नहीं आ सकती राजकुमारी जी...." कहता हुआ तपस्वी विदा हुआ।

"अवन्तिका आकृति से कोई राजकुल की जान पड़ती हैं.... आकृति की रेखाएँ कह रही हैं कि इसका जीवन सुख और सम्पदा में व्यतीत हुआ हैं....' मधुकरिका ने अपना मंतव्य प्रकट किया।

"जो हो स्वभाव से सहृदय और प्रकृति से सत्यशीला है...." पद्मावती बोली।

"आपका अनुग्रह राजकुमारी जी...." अवन्तिका ने कृतज्ञता प्रकट की।

× × × ×

"आज आपका सौन्दर्य बहुत निखरा हुआ-सा लगता है। मुझे तो चारों ओर पद्मावती ही दीख रही हैं....आपकी आँखें...." अवन्तिका ने कहा।

"अब अधिक उपहास न करो...."

"महासेन की भावी वधू को मुझसे कष्ट हुआ...."

"यह महासेन कौन हैं?" पद्मावती के स्वर में विस्मय बोल रहा था।

"उज्जयिनी में प्रद्योत नामक सम्राट है। उनका सैन्य बल शक्तिशाली है। इसीलिए वे महासेन के नाम से प्रसिद्ध हैं...."

"तुमने भ्रमपूर्ण अनुमान लगाया है। राजकुमारी की आशा उज्जयिनी की ओर नहीं...." मधुकरिका ने प्रवेश करते हुए कहा।

"तब किस ओर है?"

"राजकुमारी का लक्ष्य वत्सराज उदयन की ओर है..."

"ज्ञात नहीं देखने में वह कैसे हैं ?"

"बहुत सुन्दर...."अवन्तिका ने कहा।

"तुम्हें कैसे मालूम ?" मधुकरिका ने प्रश्न किया। पद्मावती की उत्सुक आँखें कभी मधुकरिका की ओर, कभी अवन्तिका की ओर झुक जाती थीं। वह मन ही मन असीम आनन्द का अनुभव कर रही थी।

"उज्जयिनी के निवासी ऐसा ही कहते हैं...."

"उज्जयिनी के लिए वत्सराज दुर्लभ नहीं। सौन्दर्य सबके लिए प्रिय और सौभाग्य का विषय होता है...." राजकुमारी ने कहा।

"अभी-अभी आपने सौन्दर्य को सौभाग्य का विषय कहा। इसके पूर्व मैंने आपके सौन्दर्य की चर्चा की तो उपहास कहकर टाल दिया.... यह आपके मुख से क्या सुन रही हूँ...."

"इसके लिए लज्जित हूँ, अवन्तिके !"

"लज्जा सौन्दर्य का प्रमुख अंग है। सौन्दर्य यदि सौभाग्य है तो लज्जा सिन्दूर।"

"नारी के किस अंग में अधिक सौदर्न्य होता है, अवन्तिके ! बता सकती हो ?"

"और यही नारी के साथ ही उसके सौन्दर्य का अपमान है। नारी का अंग-प्रत्यंग सुन्दर होता है। नारी का कोई भी अंग देखकर आकर्षण की लहर उत्पन्न हो जाती है।"

"जाने दो सौन्दर्य और आकर्षण को। ब्रह्मचारी एक ऐसा दुखद संवाद दे गया जो आज तक प्राणों को आन्दोलित करता रहा। वत्सराज की रक्षा हो सकी। पश्चात के समाचार नहीं मिले। बहुत चिन्तित हूँ...."

"ईश्वर रक्षा करे....वत्सराज की...."

"मधुकरिके! भैया के समीप जाकर वहाँ के समाचारों से अवगत होने की चेष्टा करो....अवन्तिका मेरे साथ है...."

"जो आज्ञा राजकुमारी जी...." कहती हुई मधुकरिका सम्राट दर्शक के समीप आ रही।

"नारी जब अपना निजत्व एक बार किसी को अर्पित कर देती है तो उसके कर्त्तव्य की मर्यादा बढ़ जाती है...."

"नारी की यही विशेषता है...."

"आपके कहने का अभिप्राय राजपुत्री जी...."

"बहुत वर्ष पूर्व मेरे विवाह की चर्चा वत्सराज से चली थी। कई कारणों से स्थगित हो गई। उनके रूप-गुण और पौरुष की चर्चा सुनी थी और मैंने अपनी आत्मा उन्हें समर्पित किया था...."

"आपका यह समर्पण तो एकांगी ही था?"

"समर्पण एक पक्ष से हो या दोनों पक्षों से उसमें शक्ति होती है।"

"वत्सराज के विवाह के पश्चात भी आपका लक्ष्य उनकी ओर रहा?"

"मेरा अपनत्व मेरे पास नहीं। उसे अपनी आत्मा के माध्यम से उन्हें दे जो चुकी थी...."

"और आपकी एकान्त साधना सदैव चलती रही?"

"अबाध और अविरल गति से...."

"वत्सराज तो वासवदत्ता के वियोग में जल रहे होंगे!"

"वासवदत्ता उनके जीवन में वरदान बनकर आयी थी। उसने वत्सराज के लिए कष्टों का सहन किया था। जीवन के हवन-कुण्ड में समिधा बनकर प्रविष्ट हुई थी...."

"जो अनुराग वत्सराज के प्रति आपका है ऐसी ही अनुरक्ति

बहुतों की भी हो सकती है। आपके पास इसका निराकरण क्या होगा ?"

"इसका कोई निराकरण नहीं। आसक्ति एक ऐसा समर्पण है, जिसका निराकरण समर्पण से ही हो सकता है। रूप-गुण पौरुष और सौन्दर्य के पीछे नारी का आकर्षण होता है। वत्सराज के प्रति बहुतों का आकर्षण होगा, इसे मैं कभी अस्वीकार नहीं कर सकती। यही तो वत्सराज की विशेषता है। जिसकी आसक्ति में अधिक बल होगा, उसी का अधिकार वत्सराज पर होगा। क्या तुम्हारा चित्त भी चञ्चल हो उठा है ?"

"राजपुत्री जी, मैं कभी पर पुरुष का दर्शन नहीं करती, चर्चा भी नहीं। आपको वत्सराज के प्रति अधिक उत्सुक और अनुरक्त देखकर मनोरञ्जन करने लगी। वियोग की ज्वाला से मेरा शरीर भी जला जा रहा है। आँखों में निद्रा नहीं आती। न जाने वे किस स्थिति में होंगे ?"

"मनुष्य का जीवन भी क्या है, जो पुरुष और नारी के संयोग के बिना अपूर्ण रह जाता है। सृष्टि की गति ही विचित्र है...."

"इसे मैं सृष्टि की दुर्बलता समझती हूँ...."

"यदि यही दुर्बलता न होती तो यह सृष्टि भी नहीं होती, न न तुम होती, न मैं...." कहती हुई राजपुत्री समीप की वाटिका में चली गई। अवन्तिका ने राजपुत्री की ओर देखा, आँखों में तृष्णा की छाया छा रही थी।

"ये फूल बहुत सुन्दर हैं...."

"तुम्हारी आँखें भी...."

"सौन्दर्य की प्रशंसा आँखों से ही होती है।"

"तुम्हारे आ जाने से मेरे जीवन में नया जीवन आ गया

है। ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि तुमसे विलग होना कठिन हो जायगा...''

''पुरुष के संसर्गों का स्वाद भी विचित्र होता है। माता-पिता और परिवार तक स्मरण नहीं आता, अपना स्मरण भी नहीं...''

''तुम्हें तो यह स्वाद मिल-चुका है!''

''इसीलिए तो जीवन भार-सा लग रहा है।''

''कौशाम्बी राजदूत गया है, उसकी प्रतीक्षा बड़ी आकुलता के साथ की जा रही है....''

''कोई समाचार मिला?''

''अभी तक इतना ही ज्ञात हुआ कि वत्सराज सकुशल हैं....''

''ईश्वर रक्षा करे....''

''ईश्वर करे तुम भी अपने प्रवासी पति को शीघ्र प्राप्त करो....'' राजपुत्री ने कहा।

अवन्तिका की मुखर-आँखों में कल्पनाओं के आशा-कुसुम खिल उठे। आँसू बनकर पंखुरियाँ बिखर गईं, धरती पर। वह पद्मावती की ओर एक बार अपने सजल नयनों से निहारकर रह गई। राज-पुत्री पद्मावती ने अवन्तिका को आकुलता से देखकर कहा—

''तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों आगए अवन्तिके।''

''आँसू बहुत ही निर्मम होते हैं। इन्हें तनिक दया नहीं आती, जब कुछ हुआ, बाँध तोड़कर बाहर आ गए....''

''ये आँसू हर्ष के हैं या विषाद के?''

''आज मेरे चित्त की चञ्चलता बढ़ गई है। आकुल आँखों में रहरह कर उत्सुकता की आभा आलोकित हो उठती है। ऐसी कारुणिक अवस्था मेरी कभी नहीं हुई। लगता है, चम्पा के ये कुसुम मेरा स्पर्श करने को आगे बढ़े आ रहे हैं।''

"यौवन जब विकास की ओर उन्मुख होता है, जीवन की गति-विधि में आकस्मिक परिवर्त्तन आवश्यक हो जाता है...."

"तुम्हें भी कभी ऐसा अनुभव हुआ ?"

"अनुभव-अनुभव करने की वस्तु है, व्यक्त करने की नहीं...."

"तुमने सदैव अपने को मौन ही रखा है। तुम भी नारी हो। नारी-नारी के सम्मुख आवरण नहीं रखती। आवरण पुरुषों के समक्ष ही शोभा पा सकता है...."

"जाने दो बहन, मुझे विवश न करो। स्मृतियों से अन्तर की आग आँखों में आँसू बनकर निकल आयेगी....मुझे क्षमा करो...."

"आज तुमने मुझे बहन कहकर पुकारा....कितना स्नेह, कितना सहृदयता है, तुम्हारे स्वर में। इतने अल्पकाल में, तुम मेरी आत्मीय हो गई...."

"जीवन की अनुभूतियों ने मुझे प्रेरणाएँ दी हैं...."

"तुम्हारे साहचर्य ने मुझे इतना विवश कर दिया है कि तुम्हारी अनुपस्थिति में भी मैं एक ऐसी अपूर्णता का अनुभव करता हूँ, जिसकी पूर्त्ति तुम्हीं से हो सकती है...."

"यह तो आपके स्वभाव का अनुग्रह मात्र है, बहन। शैशव की गति-विधि और जीवन की शालीनता से ही स्वभाव का निर्माण होता है...."

सहसा किसी की नूपुर-ध्वनि से अवन्तिका का ध्यान भङ्ग हुआ। उसने पद्मावती की ओर देखा। पद्मावती ने कहा—

"मधुकरिका है...."

"मधुकरिका प्रवेश की आज्ञा चाहती है...." परिचारिका ने विनयोचित स्वर में कहा।

"आओ, मधुकरिके तुम्हारे लिए वाटिका के सभी द्वार स्वच्छन्द हैं। कुशल है ?"

"मांगलिक है, राजपुत्री जी...."



ग्यारह

"राजपुत्री का मंगल हो!"

"कौन?"

"मधुकरिका। एक माँगलिक संवाद लेकर आयी हूँ, पुरस्कार दीजिये...."

"क्या लोगी पुरस्कार में...."

"आपका वचन...."

"यह कैसा पुरस्कार है, मधुकरिके!"

"पहले आप वचन दें। इसके पश्चात् अपना अभीष्ट आपके समक्ष रखूँगी...."

"वचन न माँगकर मुझे माँगो। मैं अपने को तुम्हें देने के लिए प्रस्तुत हूँ..."

"आपको लेकर भला मैं क्या करूँगी? आपसे मेरा कोई अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा...."

"बोल मधुकरिके! अब एक क्षण की प्रतीक्षा भी मेरे लिए असह्य हो उठी है...."

"आपका सम्बन्ध स्थापित हो गया..."

मेरी आत्मा ने यह शुभ सम्बन्ध बहुत पहले ही स्थापित कर लिया था। इस सम्वाद में कोई नवीनता नहीं...."

"सच कहती हूँ, आपका सम्बन्ध स्थापित हो गया...."

राजपुत्री की आँखें मौन हो गईं। आँखों के आकाश में सपने

आए, गए। उसने अँगड़ाई ली और उठ खड़ी हुई। आगे बढ़कर शेफालिका का एक फूल तोड़ा और अवन्तिका के समीप बैठ गई। अवन्तिका ने पूछा—

"किसके साथ मधुकरिके?"

"वत्सराज उदयन के साथ...."

"वत्सराज सकुशल हैं?"

"हाँ, अवन्तिका! वे कुशलपूर्वक हैं। उन्होंने यह सम्बन्ध स्वीकार भी कर लिया है और प्रसन्नता है कि वे मगध में पधार चुके हैं...."

"आश्चर्य है, इस अनहोनी पर...." अवन्तिका ने कहा।

"कैसी अनहोनी?"

"अभी उनके मस्तिष्क में कोलाहल होगा। इस दारुण संताप के कारण उदासीन भी हो सकते हैं...."

"महापुरुषों का हृदय बहुत विशाल होता है। उनके विचार जीवन और मृत्यु के स्वर से ऊपर उठे होते हैं। चेतना के साथ बुद्धि भी होती है।"

"इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं अपने विचार प्रकट किए?" अवन्तिका ने प्रश्न किया।

"नहीं नहीं वे यहाँ किसी अन्य प्रयोजन के क्रम में आए थे। सम्राट ने ही इस सम्बन्ध के लिए अपना प्रस्ताव रखा। पहले तो वह इसके लिए अपनी असहमति प्रकट करते रहे। अन्त में उनके किसी मंत्री ने प्रेरित किया। संभवतः रुमण्वान नामक मंत्री ने...." मधुकरिका ने कहा।

"तुम्हें ये संवाद कैसे प्राप्त हुए?"

"अभी-अभी सम्राट का शुभागमन हुआ है। मैं राजमहिषी के शयन-कक्ष में ही थी....राजमहिषी ने आपको स्मरण किया है, यह कहना तो भूल ही गई...."

"अब तुम अपने आपको भी भूल जाओगी .."

"आप दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करें। आनन्द के इस उत्सव में मैं अपने आपको भी न भूल जाऊँ...."

पद्मावती के नेत्रों में वत्सराज उदयन का चित्र उतर गया। कल्पना के उन चित्रों में अपने जीवन की जीवंत रेखाएँ ढूँढ़ती हुई एक ही क्षण में मगध से वत्स-प्रदेश में जाकर विचरण करने लगी। कौशाम्बी का राजप्रसाद और जीवन के प्रसाधन उसके समक्ष सपने बनकर आने लगे और वह सपनों के पंखों पर दूर-सुदूर प्रदेशों में उड़ने लगी। उसने मन ही मन कहा—'अब मैं दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश कर रही हूँ।'

"राजमहिषा ने और क्या कहा ?"

"कहा राजपुत्री को...." मधुकरिका ने कहते-कहते रोक लिया अपने को।

"राजमहिषी ने मुझे बुलाया है ?"

"बुलाया ही नहीं वत्सराज के शुभागमन की सूचना भी दी है...."

"क्या कहा ? वत्सराज के शुभागमन की सूचना...." अवन्तिका ने विस्मय भरे स्वर में कहा।

"सच कह रही हूँ। शीघ्रता कीजिये। सम्राट ने कहा—आज ही शुभ लग्न है, मंगलाचार होगा। शुभ कार्यों में शीघ्रता ही मंगल-सूचक होता है...."

अवन्तिका निर्निमेष नयनों से देखती रह गई। राजपुत्री को अन्तःपुर में पहुँचाकर अवन्तिका पुनः वाटिका में चली आई। पद्मावती ने अवन्तिका को अन्तःपुर में न देखकर मधुकरिका से जिज्ञासा की—

"अवन्तिका कहाँ चली गई ?"

"वाटिका की ओर चल पड़ी। अवन्तिका के समीप आकर मधुकरिका परिहास-पूर्ण स्वर में बोली—

"ऐसी बेला में तुम्हें अपने स्वामी का स्मरण न हो, आश्चर्य का विषय है। इसीलिए चन्द्रलेखा पर कालिमा-सी छा रही है...."

"तुम्हें तो सदा यही रहा है....तुम भी राजपुत्री के जीवन में अपना जीवन मिला दो...."

"मेरा जीवन तो कुछ ऐसा ही है...." कहती हुई मधुकरिका ने अवन्तिका का आलिंगन किया।

"बस रहने दो....अंग-अंग...."

"मसक रहा है, वह संकेत है....किसी के शुभागमन का...."

"ऐसा न कहो मधुकरिका ! प्राणों की पीड़ा अधीर हुई जाती है। लगता है, मेरा दुर्भाग्य मेरे सम्मुख आकर खड़ा है...."

"इस मांगलिक बेला में ऐसा अपशकुन न सोचो, अवन्तिके...."

"अंतर की आकुलता धैर्य की सीमा को तोड़ देती है...."

"कौतुक-माला गूँथकर अपना मनोरंजन करो...."

"किसके लिए ?"

"राजपुत्री के लिए। इस समय चिन्ताएँ छोड़कर अपना ध्यान इस ओर लगाओ। वत्सराज मणिभूमि पर स्नान कर रहे हैं...."

"तुमने वत्सराज को अपनी आँखों देखा ?"

"स्नेह और कौतूहल ने मुझे विवश कर दिया। सच कहती हूँ—अच्छी तरह देख लिया है। आँखें तृप्त हो गई हैं...."

"कैसे हैं देखने में ?"

"ऐसे जैसा कभी देखा नहीं। आकृति से निर्मल-आभा टपकी आ रही है....धनुषबाण से हीन कामदेव की प्रतिमा सदृश व्यक्तित्व किसी को भी आकर्षित कर सकता है...."

"अब आगे न कहो....

"पर-पुरुष की चर्चा अच्छी नहीं...."

"वत्सराज कोई पर-पुरुष थोड़े हैं। राजपुत्री आत्मीय हैं...."

"अच्छा यह कौन-सी लता है, मधुकरिके?" अवन्तिका ने संकेत करते हुए कहा।

"इसे सदा सुहागिन कहते हैं...."

"और वह?"

"सौत-सालिनी कही जाती है...."

"क्यों ऐसे प्रश्न क्यों कर रही हो?"

"वत्सराज की प्रथम रानी तो दिवंगत हो चुकी है, इसलिए सौतसालिनी की कोई आवश्यकता नहीं...." कहती हुई अवन्तिका सदा सुहागिन के कुसुम चुनने लगी। माला गूँथकर मधुकरिका के हाथों में सौंपती हुई अवन्तिका बोली—

"लो। माला गूँथना शीघ्रता का काम नहीं। सुन्दर नहीं हो सकी...."

"बहुत सुन्दर है...." मधुकरिका ने कहा और चञ्चल चरणों से अन्त पुर की ओर चली गई।

माङ्गलिका आरम्भ हुई और वेद-मन्त्रों के पाठ और अग्नि-प्रदक्षिणा के साथ परिणय संस्कार। सारा मगध वत्सराज के शुभ-दर्शन से कृत-कृत्य हुआ। रात बीती। आँखों के सोये हुये सपने जागे। दूसरे दिन प्रातः काल होने से पूर्व ही राजपुत्री वाटिका की ओर चली आई। अवन्तिका और मधुकरिका कुछ क्षण पूर्व ही आ चुकी थी। राजपुत्री को वाटिका की ओर आते देखकर मधुकरिका को आश्चर्य हुआ। वह पूछ बैठी—

"इस समय वाटिक में कैसे आई?"

"केवल यही देखने को उत्सुक रही कि अभी तक शेफालिका फूली है या नहीं...."

"भला आज भी शेफालिक नहीं फूलेगी ? आज वह रूप और यौवन के असह भार से लदी जा रही है। उसकी प्रत्येक शाखा अपना अस्तित्व लिए बैठी है...."

"विलम्ब न करो...."

"आप क्षण भर के लिए इस प्रस्तर-शिला पर बैठ जाँय। मैं अभी फूल चुन लेती हूँ...." मधुकारिका ने आग्रह के साथ कहा।

"यहाँ बैठेगी अवन्तिके...." कहती हुई राजपुत्री ने समीप की प्रस्तर-शिला की ओर संकेत किया।

"कितना सुन्दर स्थान तो है..." कहकर अवन्तिका बैठ गई।

"कितने कमनीय कुसुम हैं, अवन्तिके देखो...."

"सचमुच बहुत सुन्दर है....बहुत सुन्दर....इनके दर्शन से जीवन धन्य हो गया....'

"आज्ञा हो तो और चुन लाऊँ, राजपुत्री जी...." मधुकारिका बोली।

"बस, बस रहने दे...." अवन्तिका ने कहा।

"मत रोको अवन्तिके! मधुकरिका को और फूल चुनने दो...."

"हमारा काम फूलों का संहार करना नहीं वरन् सृजन करना है, सौन्दर्य स्पर्श के लिए नहीं, दर्शन-मात्र के योग्य होता है....यह बताइये कौशाम्बी-सम्राट कैसे लगते हैं ?"

"यह नहीं कह सकती वे कैसे लगते हैं परन्तु इतना तो तुमसे बता ही सकती हूँ, उनके बिना मन न जाने कैसा-कैसा हो रहा है।

कई दिन बीते, कई रातें। मगधराज ने वत्सराज का राजकीय सम्मान किया।

शनै-शनै पद्मावती जीवन के समीप आती गई, वत्सराज का जीवन भी उसके समीप बढ़ता गया। दो जीवन एक हुए और दो प्राण। एक दिन पद्मावती ने अवन्तिका से पूछा—

"वत्सराज के व्यवहार से अब मुझे एक सन्देह-सा होने लगा है...."

"वह क्या..." अवन्तिका ने विस्मय भरे स्वर में कहा।

"आर्यपुत्र मुझे बहुत प्रिय हैं, आर्या वासवदत्ता को भी क्या वैसे ही प्रिय होंगे?"

"क्यों नहीं! बल्कि उससे भी अधिक...."

"यह तुमने कैसे जाना...."

"यदि कम प्रेम होता तो स्वजन छोड़कर वत्सराज के साथ नहीं आती...."

"संभव है...."

"संभव नहीं, सत्य है, आर्ये...."

"आप भी वत्सराज से वीणा सिखाने के लिए आग्रह क्यों नहीं करतीं...." मधुकरिका ने कहा।

"मैंने सम्राट से प्रार्थना की थी...."

"क्या उत्तर दिया वत्सराज ने?" अवन्तिका ने उत्सुकता के साथ जिज्ञासा की।

"कुछ बोले नहीं। उत्तर में एक दीर्घ विश्वास लेकर रह गये...."

"उस दीर्घ-निश्वास का अर्थ आपने किस रूप में लिया...." अवन्तिका बोली।

"यही कि आर्यपुत्रको आर्या वासवदत्ता का स्मरण हो आया। बस मुझ पर-मात्र इतनी-सी दया की कि मेरे समक्ष रोये नहीं...."

अवन्तिका ने राजपुत्री की ओर अपने सतृष्ण नयनों से निहारा। उसके अंतर की मूक-भाषा अपलक पलकों से बाहर न आ सकी। बहुत कुछ कहने की चेष्टा करते हुये भी कुछ कह न सकी। पद्मावती ने अवन्तिका के मनोभावों को उसके अरुण-कपोलों पर अकस्मात्

खिंच आई रेखाओं के माध्यम से पढ़ने का प्रयास किया और अवन्तिका का हाथ अपने हाथों में लेकर बोली—

"क्या कहना चाहती हो, अवन्तिके....कहो न! रोक क्यों लिया अपने को...."

"यही कि....नहीं कुछ नहीं....मैं कुछ भी कहना नहीं चाहती...."अवन्तिका के स्वर में सिहरन भर गई थी। उसके समक्ष जीवन के विगत और आगत क्षण अपना विराट रूप लिए खड़े थे। वह स्वयं सिमट कर छोटी हुई जा रही थी।

"तुमने सदैव अपने जीवन पर आवरण डालना चाहा है। तुम्हारी मनोभावनाओं को समझकर भी मैं कुछ कर न सकी तुम्हारे लिए। इसका बहुत दुख है...."

"आपकी उदारता के बल पर ही जीती रही हूँ....अब तक आप पर भी मेरा अधिकार रहा। मगध का प्रवास मेरे लिए असह्य भार-सा प्रतीत होगा, जिसे किसी भी मूल्य पर वहन नहीं कर सकूँगी...."

× × × ×

"क्या होने जा रहा था और क्या हो गया, रुमण्वान। जीवन भर साहस और धैर्य का सञ्चय किया था, जो लुटा जा रहा है...."

"भाग्य की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं पर ही जीवन के चरण चला करते हैं।"

"कल तक मुट्ठी में चिता का क्षार था, आज उसी मुट्ठी में सिन्दूर कभी-कभी पद्मावती की माँग का सिन्दूर भी मुझे विचलित कर देता है। उसके माथे पर खिंची पतली-सी लाल-रेखा मुझे रहरह कर उज्जयिनि की ओर भुलाकर ले जाती है....लगता है, मेरे जीवन की कोई ऐसी अमूल्य वस्तु खो गई है, जिसके अभावमें मैं अपूर्णता का अनुभव कर रहा हूँ...."

"मनुष्य के जीवन की अपूर्णता ही सम्पूर्णता है। यह आपके हृदय की विशालता है कि अभी तक आप राजमहिषी को भूल न सके...."

"वासवदत्ता को कभी भुला न सकूँगा। मैंने बार-बार उसे भूलने की चेष्टा की है पर मेरी सारी चेष्टाएँ असफल सिद्ध हुईं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि वह मेरे समीप बैठी है। मेरी वीणा के आकुल-तार मेरे स्पर्श के बिना ही झंकृत हो उठते हैं और मेरे समक्ष वत्सराज की कमल-डंठल जैसी अँगुलियाँ थिरकती होती हैं....ऐसा क्यों होता है, रुमण्वान ?"

"इसलिए कि आपकी आत्मीयता भरी अनुरक्ति राजमहिषी को प्राप्त थी।"

"सच कहते हो रुमण्वान, कौशाम्बी की सम्पूर्ण राजसत्ता और सम्पदा एक ओर, वासवदत्ता एक ओर...."

"धीर और वीर पुरुष यों अधीर नहीं हुआ करते। मगध की राजपुत्री में ही दिवङ्गता राजमहिषी की आत्मा समाहित हो गई है...."

"यह क्या कह रहे हो रुमण्वान ?"

"विश्वास कीजिये सम्राट...."

"अच्छा तो यह बताओ तुम्हें दोनों में कौन अधिक प्रिय है, वासवदत्ता या पद्मावती ?"

"मेरे लिए दोनों का समान व्यक्तित्व है। वासवदत्ता भी उच्च कुल की थीं और मगध की तो कोई बात ही नहीं...."

"मगध में मन लग रहा है, तुम्हारा...."

"सौन्दर्य और शील मगध की परम्परागत सम्पति है। देखकर थोड़ा समय काट लिया करता हूँ..."

"अन्तःपुर की दृश्यावलियाँ..."

"विरचिका यहाँ भी है...."

"किन्तु कौशाम्बी की विरचिका और मगध की विरचिका में बहुत अन्तर है। कौशाम्बी की विरचिका समर्पण जानती है मगर मगध की...."

"अनुशासन के साथ आवरण भी है...."

"आवरण से नारी-सौन्दर्य की सम्पदा में वृद्धि ही होती है..."

"नहीं रुमण्वान, कला मांसल और निरावरण होती है। यही उसकी सार्थकता है। इसलिए कि कला जीवन के लिए होती है...." कहता हुआ वत्सराज वाटिका की ओर चल पड़ा। रुमण्वान ने अनुसरण किया। माधवी, चम्पा, बेला, रजनी गंधा की लताएँ तुहिन-कणों के भार से लदी जा रही थीं। वत्सराज ने शेफालिका की एक कली को हाथ में लेते हुए कहा—

"इन फूलों की विचित्रता तो देखो!"

"यह शेफालिका है। राजपुत्री को शेफालिका के फूल बहुत प्रिय हैं। इन्हीं फूलों को पूजा के काम में लाती हैं...."

"इन फूलों से मेरा परिचय हो चुका है...."

"आइये इस प्रस्तर-शिला पर बैठकर कुछ क्षण काटे जाँय...." दोनों प्रस्तर-शिला पर जाकर बैठ गए। रुमण्वान ने उत्सुकता के साथ पूछा—

"इस समय वाटिका में कोई नहीं है। आपसे एक बात पूछूँ?"

"स्वच्छन्दता के साथ पूछ सकते हो ...."

"आपको राजमहिषी वासवदत्ता अधिक प्रिय थीं अथवा देवी पद्मावती?"

"ऐसे प्रश्न मुझे सङ्कट में डाल देते हैं....मेरे जीवन की विगत स्मृतियाँ पुनः साकार हो उठी हैं। अन्तर में कोलाहल भर गया है..."

सहसा नूपुर-ध्वनि से वत्सराज चौंक उठे, जैसे कोई महान अपराध हो गया हो। ऐसा अपराध जिसका कहीं निराकरण न मिले। कोमल-कंठों का धीमा-धीमा स्वर दूर से छनकर आ रहा था—

"राजपुत्री जी, वत्सराज बहुत अनुदार हैं...."

"ऐसा न कहो। ईश्वर के लिए ऐसा न कहो। वे बहुत उदार हैं। जो अभी तक आर्या वासवदत्ता को न भूल सका। भला वह अनुदार हो सकता है?"

"आप ने जो कुछ कहा है, उसमें आपके सम्भ्रान्त कुल की मर्यादा बोल रही है...."

"यह तो राजमहिषी पद्मावती का स्वर है...." रुमण्वान ने कहा।

"साथ में और भी कोई है...." उदयन ने कहा और देखता रह गया—

शेफालिका की कलियों की ओर। सहसा समीप से किसी के चरणों की आहट आई। उदयन ने देखा तो कुछ भी नहीं था।

"कितना मनोरञ्जक सुन्दर प्रसङ्ग था, अवन्तिके....आओ यही ठहरें। अब आर्यपुत्र हमें देख नहीं सकते...." पद्मावती ने अवन्तिका के कानों में धीमे स्वरों से कहा? अवन्तिका की आँखों में मादक सपनें बोल गए।

"बहुत ही मनोरञ्जक...." अवन्तिका ने पद्मावती का समर्थन किया।

"हृदय पर जीवन की जो रेखाएँ खिंच जाती हैं, वे किसी भी क्षण मिटायी नहीं जा सकतीं। ऐसी रेखाएँ आजीवन स्मरण बनकर साथ चला करती हैं। आर्या वासवदत्ता की जीवन-रेखाएँ भी सम्राट के मस्तिष्क पर अपना अस्तित्व छोड़ गई हैं...."

"और उन्हीं स्मृति-रेखाओं के साथ ही आपकी जीवन-रेखा भी तो अब समान्तर होकर चल रही है...."

"तुमने ठीक ही कहा अवन्तिके! सम्राट के सम्मुख दो समानान्तर रेखाएँ है...दो समानान्तर रेखाएँ...." राजपुत्री ने कहा और एक दीर्घ उच्छ्वास लेकर रह गई।

"जिनमें एक बहुत दूर पीछे रह गई है, जिसकी करुण-स्मृति मात्र ही शेष है..."

"तुम्हारे भ्राता अबतक लौटे नहीं...."

"नहीं, राजपुत्री जी...."

"कोई संवाद भी नहीं भेजा उन्होंने...?"

"संवाद तो आया था...."

"सब कुशल है?"

"ईश्वर की कृपा के साथ आपकी उदारता है...."

"तुम बार-बार मुझे लज्जित करती हो...."

"हाँ, अपने मनोभावों को प्रकट कर आपको लज्जित अवश्य करती हूँ...."

"तुम्हें पाकर मैं बहुत कुछ पा गई हूँ...."

"इस बहुत कुछ मे मेरा निजत्व भी सम्मिलित है न?"

"अवन्तिके तुमने सम्राट को देखा है?"

"महापुरुषों को कहीं कोई देखता है, दर्शन हो जाता है...."

"कैसे लगे तुम्हें?"

"उसका उत्तर आपके पास है, मेरे पास नहीं....हाँ आज रात के अन्तिम पहर में बजती हुई वीणा पर भैरवी की मीठी और मादक धुन सुनकर मन्त्र-मुग्ध हो उठी थी, जिसकी प्रतिध्वनि अब भी मेरे प्राणों में गूँज रही है...."

"वीणा की स्वर-लहरी ने ही आर्या वासवदत्ता के प्राणों को अनुप्राणित किया था...."

अवन्तिका ने राजपुत्री पद्मावती के वितृष्ण-लोचनों की ओर देखते हुए कहा—

"मगध की शालीनता और सहृदयता इसीलिए इतनी लोक प्रियता का अधिकारी है...."

"मगध में ऐसा क्या है कि तुम सदैव इसकी रट लगाये रहती हो...."

"मगध में क्या नहीं है ? सौन्दर्य, चरित्र, स्वभाव और शौर्य सब कुछ। इन सारी वस्तुओं के अतिरिक्त है—आकर्षण, जिसके संकेत-मात्र से ही समस्त कौशाम्बी खिचकर चली आई..."

सहसा किसी के चरणों की आहट से राजपुत्री पद्मावती सिहर उठी। उसने पीछे मुड़कर देखते हुए कहा—

"कौन...."

"मधुकरिका...."

"आज बहुत विलम्ब से आँखें खुलीं तुम्हारी...."

मधुकरिका ने व्यंगपूर्ण स्वर में कहा—

"राजपुत्री की आँखों की निद्रा मेरे समीप आ गई है। आप इतने दिनों तक विलम्ब के साथ जागती-सोती रहीं, मैंने कभी कुछ नहीं कहा....और अब मेरी आवश्यकता ही क्या रह गई आपको। रात वत्सराज के साथ कटती है और दिन अवन्तिका के साथ।"

"मेरे पास इसका कोई तर्क नहीं....जिसका जीवन और भाग्य ही विपरीत हो गया हो उसे यदि तुमने ही विपरीत समझ लिया तो यह कोई अन्याय नहीं।" कहती हुई अवन्तिका के लोचन भर आए।

"तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ अवन्तिका। मधुकरिका को अभी ज्ञान ही कहाँ है, क्षमा कर दो इसे...."

"इतना ही कम ज्ञान है कि यह आपके वत्सराज के साथ रात

काटना जानती है....” अवन्तिका ने कहा और मधुकरिका को अपनी कोमल भुजाओं में बाँध लिया।

“अच्छा आज से यह विवाद ही नहीं होगा। मधुकरिका ही मेरे स्थान पर होगी। क्यों मधुकरिके....बोल....?”

“मैं क्यों रहने लगी?”

“तुम्हारे लिए बड़ा से बड़ा त्याग कर सकती हूँ....”

“ऐसे त्याग से मैं हार गई....”

“तो फिर तुम ऐसा कभी नहीं कहोगी।”

“कभी नहीं। मैं तो भूल ही गई, पूजन का समय हो गया। मन्दिर की ओर चलिए...”

राजपुत्री के साथ मधुकरिका मंदिर की ओर चली और अवन्तिका शिथिल चरणों से अपने शयन-कक्ष में चली गई।

“सुना आपने....”रुमण्वान ने उत्सुकतापूर्ण स्वरों में जिज्ञासा प्रकट की। वत्सराज ने रुमण्वान की ओर देखते हुए कहा—

“रुमण्वान...”

बारह

“आर्या पद्मावती का माथा दुख रहा है। वे पीड़ा से कराह रही हैं। तू अभी जाकर अवन्तिका को इसकी सूचना दे....” मधुकरिका ने पास खड़ी परिचारिका को आदेश दिया।

“अवन्तिका आकर क्या करेगी?”

“तर्क नहीं आदेश-पालन....”

“इससे तो अच्छा राजवैद्य को सूचना दी जाय...”

"अवन्तिका के आ जाने से ही उन्हें पर्याप्त विश्राम मिलेगा.... मैं जाकर सम्राट को इसकी सूचना देने की व्यवस्था करती हूँ..."

"राजपुत्री की शय्या कहाँ लगायी गई है ?"

"समुद्र-गृह में। शीघ्र जाकर संवाद दो, विलम्ब न करो...." मधुकरिका ने कहा और द्रुत-गति से जाती हुई परिचारिका की ओर देखती रह गई।

परिचारिका के आँखों से ओझल होते ही मधुकरिका रुमण्वान के समीप आ रही। रुमण्वान अपने शयन-कक्ष में विश्राम ले रहा था। कोमल-चरणों की आहट से उसकी आँखों के सपने टूटकर रह गए। उसने उत्सुकता के साथ साँकल खोलते हुए कहा—

"स्वागत है....

"क्या आपको नहीं ज्ञान है कि राजपुत्री का माथा दुख रहा है...?"

"मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम ?"

"सम्राट को संवाद दीजिए...."

"मुझे तो हुआ कि तुमने मुझ पर भी कोई विशेष कृपा की। एक ही साथ अनेक रंग-विरंगे चित्र उतर गए मेरी आँखों में...."

"परिहास न कीजिए...."

"आज पूर्णिमा की रात है। चन्द्रकिरणें सरोवर में खिलें कमलों से लिपट रही हैं। मेरा परिहास क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगा ?"

"अच्छा, मैं चली...." कहती हुई मधुकरिका चल पड़ी।

"सुनो तो...." रुमण्वान ने पुकारा।

"कहिए..."

"यह तो बता मेरी राजमहिषी कहाँ है ?"

"आपकी राजमहिषी समुद्र-गृह की ओर गई हैं...."मधुकरिका अन्तःपुर की ओर चल पड़ी।

रुमण्वान अतिथि-गृह की ओर चल पड़ा। उदयन अपने शयन-कक्ष में अपनी घोषवती वीणा के तारों पर अँगुलियाँ फेर रहे थे। रुमण्वान को देखकर बोले—

"इस समय तुम कैसे आए रुमण्वान ?"

"शीघ्र चलिए, सम्राट..."

"कहाँ ?"

"आर्या के माथे में पीड़ा हो रही है।"

"यह संवाद किसने दिया तुम्हें ?"

"मधुकरिका ने...."

"आर्या इस समय कहाँ ?"

"समुद्र-गृह में उनकी शय्या का प्रबन्ध हुआ है...."

"आओ चलें...." कहता हुआ उदयन अन्तःपुर की ओर चल पड़ा। समुद्र-गृह के समीप आकर रुमण्वान ने कहा—

"आप भीतर प्रविष्ट हों और मुझे आज्ञा मिले...."

"क्यों, आओ न ?"

"भीतर तो कोई नहीं। आप इस शय्या पर बैठकर राजमहिषी के शुभागमन की प्रतीक्षा करें और मैं अपने शयन-कक्ष की ओर हूँ...." कहता हुआ रुमण्वान लौट पड़ा।

उदयन कुछ क्षण तक शय्या पर बैठा राजमहिषी और मधुकरिका की प्रतीक्षा करता रहा पर किसी की आहट न पाकर लेट गया। पश्चिमी हवा साँय-साँय कर भीतर आ रही थी। दीपका का मद्धिम प्रकाश किसी प्रकार वातावरण को क्षीण आलोक दे रहा था। उदयन ने अपना अँगरखा सँभालकर अपने सम्पूर्ण शरीर पर डाल लिया। देखते-देखते प्रतीक्षा की जगह निद्रा ने ले ली। समुद्र-गृह में उदयन के साथ यदि कोई जाग रहा था तो दीपक का मद्धिम प्रकाश।

"आर्ये! भीतर जाइये, राजपुत्री माथे की असह्य पीड़ा से बहुत दुखी हैं....''अन्तःपुर के द्वार पर अवन्तिका को पहुँचाकर परिचारिका ने कहा।

"राजपुत्री की शय्या कहाँ हैं?"

"समुद्र-गृह में।"

अवन्तिका परिचारिका की ओर देखती रह गई। कई आज्ञात कल्पनाएँ उसके प्राणों को सिहरा गईं। अवन्तिका ने जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा—

"और तुम कहाँ चली?"

"तब तक मैं जाकर किसी लेप आदि का प्रबन्ध किये आती हूँ...." कहती हुई परिचारिका चली गई। अवन्तिका ने मन ही मन कहा—'वियोग की ज्वाला से बेसुध वत्सराज की आशा राजपुत्री पद्मावती भी अस्वस्थ हो गईं। परिजनों की असावधानी राजकुल को सङ्कट में डाल सकती है। राजपुत्री को मात्र एक नन्हें-से दीपक के सहारे छोड़ दिया गया है।' अवन्तिका शय्या के समीप आ रही। उसने मन-ही-मन सोचा—'मेरा अलग बैठना स्नेह की कल्पना का सूचक हो सकता है। स्वच्छन्द श्वाँस-सञ्चालन हो रहा है, ऐसा लगता है, पद्मावती पीड़ा से निवृत हो गई हैं।'

शय्या का एक भाग जो रिक्त था, उस पर अवन्तिका लेट रही। सहसा उसे सुन पड़ा—'वासवदत्ता!' और वह चिहुककर उठ गई। 'यह तो वत्सराज हैं....' अवन्तिका ने मन-ही-मन कहा। वह ठहरकर वत्सराज की गति-विधि निरखने लगी। उदयन ने पुनः कहा—'वासवदत्ते! बोलो क्या तुम्हें विरचिका का स्मरण हो रहा है? अलङ्कार धारण करो। तुन्हारा आभूषण हीन शरीर मुझसे देखा नहीं जा सकता। मेरे अपराधों को क्षमा करो....विरचिका के

लिए तुम्हारे समक्ष हाथ जोड़ता हूँ....कहाँ चली वासवदत्ते....' अवन्तिका अधिक काल तक समुद्र-गृह में ठहर न सकी।

"आप जाग उठे सम्राट..." रुमण्वान ने समुद्र-गृह में प्रवेश करते हुए कहा।

"तुम इतनी रात को कैसे आ गए रुमण्वान?"

"राजमहिषी के स्वास्थ्य का समाचार जानने के अभिप्राय से आ गया...."

"यहाँ वे आयी नहीं...."

"अपने शयन-कक्ष में ही हैं और अब वह पीड़ा से निवृत्त हो चुकी हैं...."

"रुमण्वान, तुम मेरे मित्र भी हो और मन्त्री भी...."

"इस भाव के लिए सम्राट की सहृदयता और सहानुभूति की कृतज्ञता स्वीकार करता हूँ..."

"एक संवाद सुनाऊँ?"

"सम्राट...रुमण्वान ने कहा और अपने को सचेत करता हुआ समीप जाकर बैठ गया।

"वासवदत्ता जीवित है..."

"आपने स्वप्न देखा है। राजमहिषी स्वर्गवासिनी हो गईं। आपसे आज ही तो उज्जयिनी की चर्चा की थी। अभी आपको निद्रा आई और ऐसे शुभ-स्वप्न आँखों में आ गए?"

"क्या स्वप्न कभी सत्य नहीं होते?"

"रात की अन्तिम-बेला के स्वप्न ही कभी-कभी सत्य का रूप ग्रहण कर लेते हैं, निशीथ के नहीं।"

"प्रातः के स्वप्न..." उदयन ने कहा और निश्वास लेकर रह गया।

"व्यर्थ की चिन्ताएँ छोड़िये। चिन्ता करने से ही आप नित्य

ऐसे स्वप्न देखते हैं....स्वप्न जो क्षण भर के लिए जीवन को विषम-जाल में उलझाकर रख देते हैं...."

"वह क्षण भर का आनन्द ही कितना मादक और मनोहारी होता है, इसे तुम क्या जानों ?"

"स्वप्न, स्वप्न ही हैं...."

"सत्य के अभाव में स्वप्न ही प्रेरणा देते हैं। वे स्वप्न मेरे लिए जीवन हैं...."

"आपके इस आचरण से नव राजमहिषी पद्मावती की कोमल आत्मा को दुःख हो सकता है, यह आपने नहीं सोचा ?"

"ऐसा तो कभी नहीं सोचा, रुमण्वान....इतना अवश्य जानता हूँ, पद्मावती मेरे मनोभावों को अच्छी तरह मनन कर चुकी है और पद्मावती के लिए ही वासवदत्ता को कभी भुला न सका। सम्भवत ! आगे भी न भुला सकूँ...."

सहसा समुद्र-गृह के द्वार पर कोई प्रति-छाया दीख पड़ी। रुमण्वान विस्मित-सा देखने लगा। बोला—

"कौन है ?"

"कोई परिचारिका होगी...."

रुमण्वान ने बाहर जाकर देखा, कोई नहीं था। एक अस्पष्ट छाया द्रुत-गति से अन्तःपुर की ओर जा रही थी। वह कुछ कह न सका।

"बाहर तो कोई नहीं..."

"कोई अवश्य था...."

"एक छाया को अन्तःपुर की ओर जाते हुए देखा है...."

"जाने दो, जो चली गई, उसकी कल्पना व्यर्थ है...."

"यही बात सम्राट ने मेरे अन्तर की कही है, जो सत्य है।"

"कितनी रात और शेष है ?"

"अभी रात बीती ही कहाँ, जो शेष का प्रश्न आ गया...."

"जाओ, विश्राम करो रुमण्वान। मगध में आकर जीवन का प्रत्येक क्षण अस्त-व्यस्त हो गया है...."

"उज्जयिनी में भी तो ऐसा ही हुआ था...."

"उज्जयिनी का स्मरण न दिलाओ। मस्तिष्क पर आघात पहुँचता है। ऐसा आघात जिसे सह सकने में मैं सर्वथा असमर्थता का अनुभव करता हूँ....आज तुमने फिर...."

रुमण्वान ने अपनी भूल का अनुभव किया। उसे अपने पर पश्चाताप हुआ। उदयन ने रुमण्वान का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—

"विश्राम आवश्यक है, रुमण्वान...."

× × × ×

"वत्सराज की जय हो। उज्जयिनी-सम्राट महासेन के राजदूत और सम्राज्ञी अंगारवती द्वारा भेजी गईं वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा राज्य द्वार पर उपस्थित हैं....प्रवेश की आज्ञा अपेक्षित है...." प्रतिहारी ने विनयपूर्ण स्वर में निवेदन किया।

संवाद सुनते ही उदयन पश्चाताप से भर उठा। 'मेरे पास इसका क्या उत्तर होगा। मैं इतना दुर्बल निकला कि मुझसे उज्जयिनी के धरोहर की रक्षा भी न हो सकी। नहीं मैं राजदूत के सम्मुख अपना मुख न दिखाऊँगा। मेरे भाल पर कलंक का टीका लग चुका है। अपनी कलंकित आकृति उज्जयिनी के साधारण निवासी को भी नहीं दिखाना चाहता।'

"पद्मावती को मेरा स्मरण कहो...."प्रतिहारी राजपुत्री के समीप गया। वत्सराज का स्मरण-संवाद पाते ही राजपुत्री ने अतिथि-गृह में प्रवेश किया बोली—

"आर्यपुत्र की जय हो!"

"तुमने सुना उज्जयिनी सम्राट महासेन के यहाँ से एक राजदूत और साम्राज्ञी अंगारवती की ओर से वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा आयी है..."उदयन ने कहा और मौन हो गया।

"आप मौन क्यों हो गए ?"

"मेरे पास मौन धारण करने के अतिरिक्त और क्या रह गया है ?"

"आप यों विचलित न हो सम्राट....कहाँ हैं वे लोग ? प्रतिहारी...."

"राजपुत्री की आज्ञा की प्रतीक्षा है...."

"उज्जयिनी के राजदूत और धात्री को सम्मान के साथ अतिथि-गृह में ले आओ...."

"जो आज्ञा राजपुत्री जी...." कहता हुआ प्रतिहारी चला गया।

"स्वजनों से मिलने की मेरी बड़ी उत्कंठा है। उज्जयिनी का संवाद और कुशल जानने को मेरी बड़ी अभिलाषा है...."

"सत्य ही कहा तुमने। वासवदत्ता के स्वजन या मेरे स्वजन भी तुम्हारे ही स्वजन हैं। तुमने अपने अनुरूप ही कहा...."

"पिता और माता जी ने क्या कहा होगा यह सुनने के लिए मेरी आकुलता बढ़ गई है...."

"भीतर आईये, सम्राट आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"सम्राट की जय हो !" राजदूत ने कहा।

"उज्जयिनी में कुशल हैं ?"

"सम्राट महासेन सकुशल आपकी कुशलत के अभिलाषी हैं...." राजदूत ने वसुन्धरा की ओर देखा। धात्री वसुन्धरा ने कहा—

"स्वामिनी सकुशल हैं...."

"माँ—कुशल...." कहता हुआ उदयन रो पड़ा।

"धैर्य से काम लीजिये आर्यपुत्र। यदि वासवदत्ता पर आपकी

ऐसी अनुरक्ति है तो वह कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकती....”

“राजपुत्री जी, मधुकरिका को आपसे कुछ आवश्यक कार्य है....” प्रतिहारी ने कहा।

“भीतर ही भेज दो....”

“वह ब्राह्मण तपस्वी जो अवन्तिका को अपनी थाती-स्वरूप परिपालन के लिए रख गया था, लौटा लेने के लिए द्वार पर उपस्थित है....”

“सम्मान पूर्वक भीतर ले आओ....साथ ही अवन्तिका को भी। किसी की थाती साक्षी की उपस्थिति में ही लौटायी जाती है....”

“न्यायपूर्ण शिष्टाचार यही है, आर्ये....” वसुन्धरा ने कहा।

“आपका जीवन मंगलमय हो....!” ब्राह्मण तपस्वी ने कहा।

अपनी मुखाकृति पर आवरण डाले नम्रता के साथ अपने चरणों को धरती पर रखती हुई अवन्तिका ने प्रवेश किया।

उदयन ने मन ही मन कहा—‘यह स्वर तो परिचित-सा लगता है जैसे कोई स्वजन बोल रहा हो।’ पद्मावती ने अवन्तिका को ब्राह्मण के सम्मुख उपस्थित करते समय उसकी मुखाकृति पर से आवरण हटा दिया। धात्री वसुन्धरा ने आश्चर्य और विस्मय भरे स्वर में कहा—

“यह तो राजपुत्री वासवदत्ता है....!”

“सम्राट की जय हो! राजमहिषी को छिपाकर मैंने बड़ा अपराध किया। क्षमा-प्रार्थी हूँ....जो कुछ भी किया कौशाम्बी के लिए....”

पद्मावती वासवदत्ता के चरणों पर गिर पड़ी—बोली—

“अनजाने में मेरे व्यवहार से तुम्हें कष्ट पहुँचा होगा, मुझे क्षमा करो बहन...”

वासवदत्ता ने उसे उठाकर अपने अंक से लगा लिया।

पद्मावती ने कहा—“अवन्तिका!”